प्रेम-प्रोत्साहन-प्रतिभा का प्रतीक

अभिनव इमरोज़

Abhinav Imroz

ISSN 2321-1105

वर्ष–14, अंक–05, मई, 2025

www.abhinavimroz.com

हिन्दी काव्य जगत की ओर से श्रद्धाँजलि

वहाँ और कुछ भी नहीं बचा है आज

पहाड़ी के पीछे
ढलान पर है सूरज
और सन्नाटे की चादर में
लिपटी सड़क
साथी है मेरे
निचाट अकेलेपन का
महसूसता हूँ
एक अनिवर्चनीय सुख
मौन में स्पंदित
इस वातावरण में
कि इस क्षण अकेला हूँ
और कोई जल्दी नहीं है
मेरे अनथक पैरों को कहीं
पहुँचने की

उभयान्त दूरी पर
संघटित हो रहे हैं
पश्चिमाकाश में
सफेद, सलेटी
और सुरमई रंग के बादल

परिन्दे लौट रहे हैं
बसेरे की ओर
छँटने लगी है
धीमे-धीमे
स्मृति के झरोखे से
धुँध

अचानक
जगमगा उठती है
मेरी इच्छाओं की दीपमलिका
लेकिन
मुड़ते नहीं हैं पैर
बसेरे की ओर

वहाँ
अनन्त प्रतीक्षा की
गहरी घाटी के सिवा
और कुछ भी नहीं बचा है
आज।

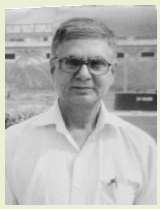

डॉ. वरुण तिवारी,
दिल्ली, मो. 8860478066

हाँ- बचा है आशू जी का प्रेम, प्रेरणा और पुरअसर स्मृतियाँ, दरो-दीवार से मुखर होती हुई खामोशियाँ और मुस्कुराती हुई सरगोशियाँ जो अब ढल जाएँगी– सुरेश की कविताओं और कहानियों में...

मेरी तरह तुम्हें भी

तुम आना ज़रूर
अपने सुंदर पंख फैलाए
अपने गाँव की
तूफानी नदी की
लहरों पर तैरती

इस पार मैं
तुम्हारी राह देखूँगा

पर तुम आओगी कैसे

मेरी तरह तुम्हें भी
तेज़ धार में
तैरना नहीं आता।

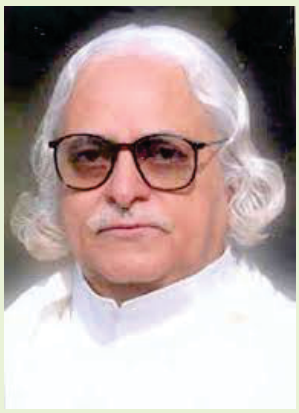

जाबिर हुसेन,
संपादक: 'दोआबा'
पटना, मो. 9431602575

सुनहरी घास

मुझे मालूम है
इस रोज़
तुम आओगे
मेरे ख़ाब में
तन्हा
सितारे
चूमते होंगे
तुम्हारे पांव

हमारे और तुम्हारे
बीच, केवल
सुनहरी घास का
पर्दा गिरा होगा।

चुप के साथ

यूँही, किसी दिन
तुम एक ख़ामोश
चुप के साथ आ जाना

जैसी चली गई थीं
तुम, चुपचाप
किसी दिन
मुझे बताए बग़ैर
और मैं
सन्न रह गया था।

कुछ और बाकी है

मौत मेरे
पास से
आकर
गुजर गयी
कुछ और
लिखना
बाकी है
शायद

साभार:

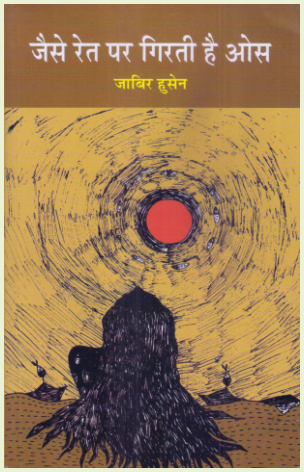

मैं कुछ बेहतर ढूँढ़ रहा हूँ
घर में हूँ घर ढूँढ़ रहा हूँ

साभार: 'बाहर धूप खड़ी है', विज्ञान व्रत, नोएडा, मो. 09810224571

इस अंक में

विज्ञान व्रत	*शे'र, स्कैच*	3
प्रो. रामस्वार्थ ठाकुर	*विचार निकुँज*	4
संपादकीय, देवेन्द्र कुमार बहल		5
नरेन्द्र नागदेव	*कहानी*	6
स्व. सत्येन्द्र शरत	*कहानी*	10
निशिगंधा	*कहानी*	13
डॉ. नीरू मित्तल 'नीर'	*कहानी*	18
हँसा विश्नोई	*कहानी*	21
डॉ. तौसीफ बरेलवी	*कहानी*	26
आचार्य नीरज शास्त्री	*कहानी*	31
सुरेश बाबू मिश्रा	*कहानी*	34
विनोद कुमार दवे	*कहानी*	37
अख़तर अली	*व्यंग्य*	43
पूजा अग्निहोत्री	लघुकथा	44
ऋतु दुबे	लघुकथा	46

कृपया अपनी रचनाएँ केवल
abhinavimroz@gmail.com
पर ही भेंजें।

प्रकाशन कार्यालयः
बी 3/3223 वसंत कुंज,
नई दिल्ली.110070
दूरभाष : 09910497972
e-mail: abhinavimroz@gmail.com
dk.bahl1942@gmail.com,
facebook: facebook.com/abhinavimroz
website : abhinavimroz.page

Paytm **PhonePe**

Bank Account Details

डी. के. बहल, A/c No. 520101222134565
युनियन बैंक, वसंत कुंज, नई दिल्ली 110070
IFSC Code : UBIN0905381

संपादन–संचालन अवैतनिक/रचनाओं की जिम्मेदारी लेखकों की प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक–सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवादों के लिए, न्यायालय क्षेत्र दिल्ली।

स्वत्वाधिकारी मुद्रकए वं प्रकाशक श्री देवेन्द्र कुमार बहल की ओर से डिकोरपेक इण्डिया प्रा. लि., 291–डी, सेक्टर–6, आई.एम.टी. मानेसर, गुरुग्राम, हरियाणा से छपवा कर बी–3/3223 वसंत कुंज, नई दिल्ली – 110070 से प्रकाशित। संपादक, देवेन्द्र कुमार बहल

विचार निकुँज

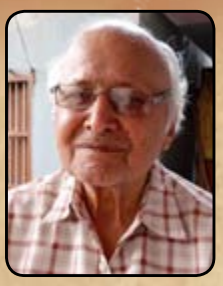

प्रो. रामस्वार्थ ठाकुर

भाषा की सार्वजनीन गरिमा के संबंध में एक काव्योक्ति पढ़िये...

मेरी भाषा में तोते भी
राम राम जब कहते हैं
मेरे रोम_ रोम से मानो
सुधा स्रोत तब बहते हैं।
सबकुछ छूट जाये,
मैं अपनी भाषा कभी न छोड़ूँगा
यह मेरी माता है इससे
नाता कभी न छोड़ूँगा।
मेरा उन्नत देश आज यदि
अवनति से आक्रान्त हुआ
अंधकार में मार्ग भूलकर
भटक रहा है भ्रान्त हुआ
तो भी भय की बात नहीं है
भाषा पार लगायेगी
मेरे साथ प्रति ध्वनि देगी
कली-कली खिल जायेगी।

—राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त।

इसमें "मेरा उन्नत देश " के साथ अवनति से आक्रान्त का उल्लेख देश की स्वाधीनता के पूर्व के अर्थ में अभिप्रेत है। यह सर्वविदित है कि देश की स्वाधीनता के लिए जनशक्ति, राजनीतिक शक्तियों /नेता _कार्यकर्ताओं के साथ भावात्मक और वैचारिक स्तर पर भी देशवासी जाग उठे थे। देश की प्राणसंभवा भाषा की शक्तियों का इसमें अभूतपूर्व योगदान था। इसमें पत्रकार, कवि, लेखक, किसान, मजदूरों की सहभागिता भी सुनिश्चित हो रही थी।

–मोतिहारी पूर्वी चम्पारण बिहार मो. 9123419601

संपादकीय

कहानी की कहानी लिखने की प्रेरणा मुझे जीवन में व्याप्त कहानियों से मिली जिसका आदि रूप अध्यात्म की गहराई और वर्तमान रूप आकाशीय आयामों को स्पर्श करती हुई जीवन में व्याप्त अनुभूतियों का इंद्रधनुष है, हम कहानी लेकर पैदा होते हैं, कहानी जीते हैं, और कहनी, कथनी और करनी की अतंरधारा बनते-बनते अंत में रंगमंच से प्रस्थान कर जाते हैं लेकिन कहानी जो हम छोड़कर जाते हैं उस का सफर मुतवातिर चलता रहता है।

गो वह राजी की तत्-सम हो या भीष्म का तमस।

नवजात शिशु के प्रथम रुदन से
पालने की किलकारियों से ही आरम्भ हो जाती हैं कहानियाँ।
पंडित जी करें विचार जन्म-पत्री का, करें भविष्यवाणियाँ।
ग्रहदोष की लाचारियां और सम्भावित बीमारियाँ।
सुझाएं उपाय, लगाएं टीका, बांधे ताबीज़,
करें तैयार एक नहीं दस-दस कहानियाँ।

माँ की लोरियाँ,
चांद के सफर की कहानियाँ,
दादा-दादी ने मिलवाए देवी-देवता,
राजा-रानी, चिड़ी-चिड़ा, शेर और गीदड़।
आवाज़ें बदल-बदल तुतला-तुतला कर
सुर्नाइं होनी और अनहोनी की कहानियाँ।

हमारा पालन-पोषण ही कहानियों से आरम्भ होता है।
पालने से बाहर निकले तो देखा
हर पल पुलकित हो रही- ''तहानियाँ'',
पल्लवित होती जीवन लीलाओं को।
मां की गोद, इसका कंधा, उसकी उंगली,
निकल पड़े देखने खिले फूल और कलियों को।
हुए बड़े, लगे घूमने आँगन-आँगन और गलियों में।
देखा जीवन एक कहानी है,
कभी सुनोगे, कभी सुनाओगे, कभी पढ़ोगे
तो कभी देखोगे कहानियाँ ही कहानियाँ।

क्या आप ऐसा अनुभव नहीं करते
कि कहानियां आप के आसपास घूमती हैं?
विश्वास कीजिए!
अगर मैं कहानी हूँ
तो आप भी किसी कहानी-ग्रंथ से कम नहीं हैं।
जितने मुंह उतनी बातें।
बातें भी तो कहानियों से निकलती हैं।
सच्ची हों, झूठी हों या काल्पनिक।
सच-सच बताना कहानी मत सुनाना।
मैं तो थक गया उसकी कहानियां सुनते-सुनते,
क्या करूं सुननी पड़ती हैं, मेरी मजबूरी है
क्योंकि मुझे भी तो सुनानी होती हैं अपनी कहानियाँ।
उसकी एक मेरी दस।

रोज़ इक नई कहानी, कभी सूत्रधार मास्टर देवराज
तो कभी पड़ोसी पं. संतराम
तो कभी कमेटी का दरोग़ा ज्वाला प्रसाद।
कदम-कदम पर, हर गली के मोड़ पर, मालरोड पर,
मुहल्ले-मुहल्ले घूमती फिरती हैं कहानियां।
कहानी प्रतिष्ठा की, कहानी आत्म-संतुष्टि की,
कहानी दिले-नादां की तो कहानी नाकाम मुहब्बत की।
गरज़ कि कहानी के बीच कहानी-बेअंत सफर,
''हम रहें न रहें, रहेंगी हमारी निशानियाँ
और दोहराएंगी हमारी कहानियाँ।''[1]

कहानी कहां नहीं है-
ममता, वात्सल्य, संवेदनशीलता, पारिवारिक एकता,
सामाजिक समता, शोषण, शौर्य, निश्छल प्रेम-
यह सब कहानियाँ ही तो हैं।
जीवन का हर पहलू कहानी है।
मां का दुलार, प्रेमिका का प्यार, दोस्त का हौसला,
बच्चों से गौरव, गुरू-गौरांग से मार्गदर्शन
ही विषयवस्तु हैं कहानी के,
जो हृदय में रस और
रागात्मक सम्बंध स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं।

1. भाव-फिल्म 420

क्रमशः जून अंक में

कहानी

अब हँसी नहीं आती

साभार

प्रतिष्ठित कथाकार नरेन्द्र नागदेव हर कहानी के फलक पर अपने पूरे कलामय व्यक्तित्व के साथ मौजूद होते हैं, वह भी पूरी एकाग्रता के साथ, कहानी दर कहानी बदलती हुई तस्वीरों में एक स्थायी लय की तरह। उनकी कहानियों की संरचना में तीनों स्वर साथ-साथ चलते हैं– मूल्यों के अंकन की ज़िद, उनके विघटन का यथार्थ और इन्हें सतत देखती अंतरात्मा की आँख, जिसे कथाकार की केंद्रीय दृष्टि भी कहा जा सकता है।

उनकी कहानियाँ वर्तमान और अतीत, कल्पना और यथार्थ, सही और ग़लत तथा मन के अंधेरों और उजालों के बीच झूलती हुई सी चलती हैं। वे अपनी आत्मीयता, संवेदनशीलता, और स्मृति संपन्नता के प्राचुर्य के साथ अपनी सहज उपस्थिति दर्ज कराती हैं।

रचनाओं की मोहक भाषा, शिल्प की महीन बुनावट तथा प्रस्तुतीकरण में निजता का स्पर्श उन्हें अलग पहचान देते हैं।

इन कहानियों का फलक विस्तृत है। एक ओर वे एक अराजक समय की चपेट में आए व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व और मनोविज्ञान को वैयक्तिक स्पर्श के साथ उकेरते हैं, तो वहीं दूसरी ओर बाह्य विडंबनाओं को भी प्रतीकात्मक तथा सृजनात्मक ऊर्जा के साथ प्रस्तुत करते हैं। मानवीय मूल्यों को खंगालते हुए वे कभी वर्तमान के परिदृश्य को पकड़ते हैं, तो कभी सदियों के आर-पार इतिहास के पन्नों तक पहुँच जाते हैं।

'पेड़ खाली नहीं है' नरेन्द्र नागदेव की विगत आठ-दस वर्षों में प्रकाशित-चर्चित कहानियों का संग्रह है, जिसमें वे तमाम विशेषताएँ विद्यमान हैं, जो उन्हें समकालीन साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं। –संपादक

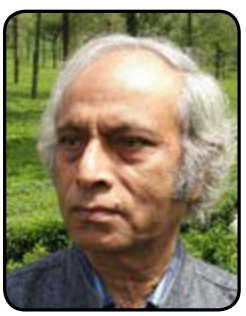

नरेन्द्र नागदेव

मैंने कभी भी यह नहीं सोचा था कि इस तरह आपसे मुलाकात हो जाएगी। वह भी उम्र के इतने दशक पार करके।

हम बचपन को लांघकर एक बार बिछड़ने के बाद फिर कभी मिले ही नहीं। सिर्फ सुनते रहते थे एक-दूसरे के बारे में। अब मिले हैं इसी शहर में, जब अपने रिटायरमेंट का बोझ कंधों पर ढोते हुए मैं यहाँ के रेलवे स्टेशन पर उतरा था और फटी-फटी आँखों से शहर को देखते हुए उसे अपना परिचय देने की कोशिश कर रहा था कि अरे, ये मैं हूँ... मैं आया हूँ... मुझे नहीं पहचाना ?... मैं तो अपना पूरा बचपन यहीं छोड़कर गया था... तुम्हारे चौक में, जहाँ बरगद के नीचे गोल चबूतरे पर चांदनी रातों में सुनाए गए हमारे किस्से-कहानियाँ अभी भी मंडरा रहे होंगे हवा की परतों में... क्या मैं किसी टाइम मशीन से वक्त को खंगालकर अतीत में जा सकता हूँ...पांच-छह दशक पीछे... है कोई ऐसी सुविधा अब इस शहर में ?

तभी अनायास आपने मेरे कंधे पर अपना हाथ रखा था। कुछ अनिश्चित तो आप भी थे ही। स्वभावतः कुछ क्षण असमंजस में हम एक-दूसरे के चेहरों को परखते रहे और फिर बेसाख्ता एक-दूसरे से लिपट गए थे... अरे यार... तुम ?

सुबह हुई इस अनायास मुलाकात के बाद अब साथ-साथ एक पूरा दिन बीत चुका है। ... हजारों-हजार बातें कर चुकने के बाद अब हम उस पाँच दशक के बाद मिलने के शॉक को सहजतापूर्वक झेल चुके हैं। और इस तथ्य को भी पूर्णतः स्वीकार कर चुके हैं कि शहर में अब पहले जैसी बात नहीं रही।

मैं आपकी नौकरी, घर गृहस्थी वगैरह तमाम बातों पर विस्तार से जान चुका हूँ और आपके इस बार - बार पूछे गए प्रश्न पर खासी असुविधा भी महसूस कर चुका हूँ कि... और...कैसी गुज़री ज़िंदगी ? ...

मैं आपको बता नहीं सकता कि रात का खाना आपके घर खाकर मैं किस कदर अभिभूत हो गया हूँ।

और अब रात है... आकाश में चाँद है...हवा में भी थोड़ा-बहुत पहले वाला अपनत्व तो शेष है ही...मुझे आपका यह प्रस्ताव भी अच्छा लगा कि चलो अपन उसी चबूतरे पर बैठें जहाँ बचपन के दिनों में रात लगभग इसी समय हम सब मुहल्ले के बच्चे एकत्र होकर किस्से-कहानियाँ सुनाते थे ... और यह कितना सुखद है कि शहर में इतना कुछ बदल जाने के बाद भी वह चबूतरा अभी वहीं है। वैसा ही है... हमारे अतीत का एक टुकड़ा है यह जो इतने दशकों से शायद हमारे ही इंतजार में बैठा रहा था। इसे पता था कि एक दिन हम दोनों अपनी उम्र के ढलान पर यहाँ आएँगे... और कोशिश करेंगे कि उसी तरह वही - वही किस्से सुनाएँ एक-दूसरे को, जो सुनाते-सुनाते उन दिनों हम खूब हँसते थे।

चलो शेखचिल्ली वाला किस्सा शुरू करें ? ... अब तो स्पष्ट याद भी नहीं आता कि क्या था शुरू में ? ...कि शेखचिल्ली सिर पर दही की मटकी लिए जा रहा था सड़क पर ... रास्ते में उसे एक पैसे का सिक्का पड़ा मिला। ... उसे हाथ में लेते ही उसकी कल्पना के पंख लग गए... कि इस सिक्के से पहले तो मैं यह खरीदूँगा। ...उसे मुनाफे में बेचकर दो पैसे मिलेंगे तो उससे वह खरीदूँगा...उसे बेचकर चार पैसे में उससे बड़ी चीज खरीदूँगा...

खरीद-बेच... खरीद-बेच... पूँजी बढ़ती जाएगी... व्यापार बढ़ता जाएगा... फिर घर खरीदूँगा...फिर बड़ी कोठी... बाग-बगीचों और इत्र के फव्वारों वाली... इस बीच शादी होगी... फिर बच्चे... फिर मैं दादा बनूँगा...सोने के सिंहासन पर बैठूँगा... पोते मेरे कंधों पर चढ़कर मस्ती करेंगे... पर अगर उन्होंने दाढ़ी में हाथ लगाया तो मैं गुस्से में कसकर उन्हें ऐसे झटक दूँगा... ऐसे...

और उसने ऐसे झटका सिर को कि दही की मटकी नीचे गिरी और चूर-चूर हो गई... फिर ? ...फिर वह वापस आ गया ज़मीन पर और रास्ते में बैठकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। ... भीड़ इकट्ठा हो गई... सब हँसने लगे...

सब हँसते थे... किस्सा सुनाते हुए हम बच्चे भी खूब हँसते थे...

लेकिन अब ? ... आज हँस पाएँगे हम उस बात पर ? उम्र की इतनी दूरियाँ पार कर चुकने के बाद ?

क्या उसमें सचमुच कोई हँसने वाली बात थी ? ... उसे एक सिक्का मिला था और उसने आनन-फानन में सपने बुन लिए ! ऐसा क्या गलत किया उसने ? मैं समझता हूँ सपने बुनना हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। खासकर उसका जो दही की मटकी सिर पर रखकर धूप में पैदल चल रहा हो और अनायास उसके सामने एक पैसे का सिक्का आ गया हो !

अपना बचपन यहीं छोड़कर ज़िंदगी के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर कदम धरने के बाद हमने खुद यही सब नहीं किया था क्या ? ... और फिर क्या इसी अंदाज़ में उनके अकस्मात् टूटने का दंश झेलते नहीं रहे थे ?

दफ्तर में क्लर्क की नौकरी का पत्र पाकर मैं भी रात भर सोचता रहा था कि एक दिन तरक्की करते-करते मैं चेयरमैन बन जाऊँगा और फिर अगर किसी ने मेरा आदेश नहीं माना तो उसे इस तरह डाटूँगा - ओ... यू गैट लॉस्ट ब्लडी....

पता नहीं मैं कैसे अपनी मेज़ पर बैठे-बैठे यह वाक्य ज़ोर से तब बोल पड़ा था, जब मेरे ठीक सामने राउँड पर निकले डाइरेक्टर साहब खड़े थे।

क्या करता मैं ? होश ही नहीं था ! ...नतीजा वही हुआ जो होना था। इसलिए नहीं हँस सकते ना हम अब शेखचिल्ली की कहानी पर।

अब यह अपनी-अपनी भाग्यरेखा है बंधु। सपनों को टूटना हो तो वे एक दिन में भी टूट सकते हैं अथवा एक पूरी ज़िंदगी में धीरे-धीरे भी। ठीक है तब हम बच्चे थे। समझते नहीं थे। दही की मटकी के साथ शेखचिल्ली के सपने टूटे तो हम हँस दिए थे खिलखिलाकर... वह तो बाद में जब अपने साथ घटता है तब पता चलता है कि कितनी तकलीफ से भरा होता है एक सपने का टूट जाना !...

अरसे बाद... झर-झर बारिश के एक दिन पापा मेरा कमरा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते, भीगते-भीगते आए थे। मैं अपने अस्त-व्यस्त कमरे में पड़ा था। बढ़ी हुई दाढ़ी।

चाय का सूखा प्याला। ऐश-ट्रे में सिगरेट के टुकड़े। ...मेरी आँखें कुछ ज़्यादा लाल हो जाती हैं क्या ? ...पता नहीं। उन्होंने मेरा चेहरा देखा था। और वे सहम गए थे। तब मेरी नौकरी छूट चुकी थी और मैं धक्के खा रहा था।

मैं दोष नहीं दे रहा किसी को, अथवा परिस्थितियों को। मैं सिर्फ यह कह रहा हूँ कि सपनों का टूट जाना हंसी-मजाक का विषय नहीं हो सकता। इसलिए हम शेखचिल्ली की मटकी टूट जाने पर बचपन की तरह खिलखिलाकर तो नहीं हँस सकते।

पर अब इतने दिन बाद मिले हैं तो गंभीर उबाऊ बातें करने में क्या फायदा ? हंसेंगे नहीं तो क्या कोई मतलब है यहाँ बैठने का ? अरे, हम अपने बचपन के कुछ बेहद आत्मीय, अमूल्य क्षणों को सहेजने के लिए ही तो यहाँ बैठे हैं बंधु !

अच्छा चलो अपन उस चोर की कहानी सुनाएँ जिसे सिपाही पकड़कर राजा के दरबार में ले गए थे।

राजा न्यायप्रिय था। उसने चोर को ही यह निर्णय करने का अधिकार दिया कि वह तय कर ले कि सज़ा के तौर पर पच्चीस कोड़े खाना चाहेगा अथवा पच्चीस तेज़ मिर्चियाँ ? चोर ने कोड़े खाने की सज़ा स्वीकार कर ली।

..कोड़े शुरू... एक... दो... तीन... चार...

हर कोड़े पर चोर चीखता। और पांचवें कोड़े पर तो वह राजा के चरणों में लेट गया कि हुजूर दूसरी सज़ा ठीक है... मिर्चियाँ मंगा दें !

मिर्ची एक... दो...तीन... चार...

हर मिर्ची के साथ वह छटपटाता चिल्लाता और पांचवीं मिर्ची पर तो राजा के पैरों में लोट गया कि हुजूर इससे तो कोड़े ही लगा दीजिए...

कोड़े छह...सात...आठ...नौ...

दस तक आते-आते वह जार-जार रोने लगा कि हुजूर फिर से मिर्चियों की सज़ा दे दें।

मिर्ची छह... सात....आठ...नौ....

तेज़ जलन के मारे दसवीं मिर्ची तक आते-आते फिर वह बेज़ार हो गया कि हुजूर इससे तो... कोड़े की सज़ा ही दे दीजिए...

कोड़े ... ग्यारह...बारह... तेरह ...

फिर मिर्चियां...

फिर कोड़े ...

फिर मिर्चियाँ...

सज़ा के अंत तक वह पच्चीस कोड़े भी खा चुका था और पूरी पच्चीस मिर्चियाँ भी ! और यहीं बैठे तमाम बच्चे लोटपोट होकर हँसते थे... स्साला... उल्लू का पट्ठा...!

अब हँस सकेंगे क्या हम यही कहानी सुनाते हुए ? खंगालकर देखें अपनी ज़िंदगी के गुजरे हुए वर्ष ?

हम स्वयं क्या अलग-अलग दायरों में ज़िंदगी भर नहीं झूलते रहे दोनों ओर की यातनाएं झेलते हुए ?

पहले दुआ करते रहे कि या खुदा हमें अपनों ही के बीच रहने दे। वहाँ जब अपनों के जुल्म बर्दाश्त से बाहर हो गए तो तड़पने लगे कि बेहतर है कि गैरों के बीच ही जगह दे दे। फिर गैरों के बीच अकेलापन इस कदर सताने लगा कि अपनों के बीच लौटना ही ज़्यादा मुनासिब लगा। और उसके भी कुछ अरसे बाद एक बार फिर...!

तुम सुना था बेहद दुखी थे अपने वतन में। कोई साला कद्र ही नहीं करता था। भुगतते रहे वर्षों तक। फिर अंत में जहाज पर बैठ गए और पीछे छूटते वतन को देखकर चिल्लाए कि मैं जा रहा हूँ... अब नहीं आऊँगा लौटकर। चले तो गए पर वहाँ विदेश की ज़मीन पर जड़ों से कटने का दर्द और अकेलापन झेलते रहे। चिट्ठी आई है आई है चिट्ठी आई है... सुन-सुनकर आँसू छलकाते रहे। एक बार फिर इधर आए... एक बार फिर उधर गए...

यानी इधर से दस कोड़े खाकर उधर जाते रहे और उधर दस मिर्चियों का स्वाद लेकर इधर आते रहे... उम्र भर !

बताओ, हँस सकेंगे अब उस कहानी वाले चोर पर ?

अब बात यह है कि हम तो यहाँ बचपन की कहानियाँ सुनाने के लिए बैठे हैं और उसी तरह उन पर हँसने के लिए। तो चलो अपन अपनी उसी कहानी पर आ जाएँ कि एक था राजा एक थी रानी, दोनों मर गए खतम कहानी।

मुझे याद है खास कर हम दोनों हँसते थे इस कहानी पर। कुल ग्यारह शब्दों की यह कहानी।

पर अब लगता है कि इतनी संपूर्ण कहानी दूसरी और कोई हो ही नहीं सकती। उन ग्यारह शब्दों के बीच की ठोस निर्मम वास्तविकता और सघन उदासी मिलेगी और कहीं भी ?

यानी कि कोई एक बड़ा राजा रहा होगा वह। उसने जी होगी एक भरपूर ज़िंदगी। उस शहर में मान-सम्मान रहा होगा उसका। जगमग दरबार और सेना और... कीमती पालकियां...

कदमों में झुका जाता एक समृद्ध शहर... और उड़ान भरने के पहले उससे आज्ञा लेते परिंदे... ।

कहानी आगे बढ़ती है कि उसकी एक रानी थी । क्या उसके रूप और गुणों का वर्णन मैं फिलहाल आपकी कल्पना पर छोड़ दूं ?

कहानी यकीनन इस यथार्थ को रेखांकित करती है कि एक समय वे दोनों थे । उन्होंने साथ-साथ ज़िंदगी जी । वे हंसे, वे रोए, उन्होंने जश्न मनाए... और बस एक दिन वे नहीं रहे ! विस्मृत... जैसे कभी थे ही नहीं!

क्या किसी भी देशकाल में कही गई इतनी संजीदा, इतनी संपूर्ण कहानी पर हँस भी सकेंगे हम ?

तो क्या इस कहानी को अब इस तरह से कहें हम कि एक था मैं और एक थे तुम ।

और अब इसकी अगली पंक्ति सुनने की हिम्मत है हममें ?

नहीं आई ना हँसी ? ...झुरझुरी-सी आई है पीठ में बस....!

पता नहीं एक उम्र जी लेने के बाद शायद हम बचपन की कहानियों पर वैसी सहज प्रतिक्रिया नहीं दे पाते जैसी तब देते थे । हर प्रतिक्रिया के पीछे ज़िंदगी के अनुभव आ खड़े होते हैं । नाहक, बिना बुलाए !...

रात हो चली है बंधु । चौक सुनसान हो चला है । इस समय तक तो बच्चे घर भी जा चुके होते थे ।

चलो किसी कहानी पर हँस नहीं पाए तो चलते-चलते एकाध गंभीर कहानी ही कह लें । बड़ी शिक्षाप्रद कहानी है । कक्षा दो में आप्टे मास्टर सुनाते थे हमें ।

कि एक था खरगोश । धूर्त और तेज़ । और एक था कछुआ । मेहनती और सीधा-सादा । दोनों में दौड़ जीतने की शर्त लगी ।

कछुआ अपनी धीमी, सधी चाल से चलता रहा... चलता रहा । चालाक खरगोश रुकता, फिर सोता, फिर छलांगें लगाता और दो मिनट में उतनी दूरी पार कर लेता जो कछुए ने दो घंटे में पार की थी ।

... मैं ज़िंदगी भर उसी कछुए की तरह धीरे-धीरे चलता रहा । बिना कोई चालाकी किए । दूसरी ओर खरगोश बने वे लोग थे जो बखूबी दुनिया को साध रहे थे... चैन की नींद सो रहे थे । फिर कुलांचें भर-भरकर आगे निकल रहे थे... और दौड़ के अंत में मैंने देखा कि फिनिशिंग लाइन पर वे पहले ही पहुँचकर जीत भी चुके थे...

.... वैसे.... कहानी के अनुसार तो पहले मुझे ही पहुँचना था ना बंधु ? अब मैं आँखें मिचमिचाते हुए बिलकुल बेवकूफों की तरह आपसे सवाल कर रहा हूँ । ... और इतनी देर बाद पहली बार मुझे गौर से देखते हुए आप खुलकर हँस पड़े हैं इस सवाल पर !

सिर्फ आप ही हँसते तो मैं झेल भी जाता । लेकिन अब तो चौक...पेड़.... मकान... सब हँसने लगे हैं... बल्कि संभव है कुछ देर रुकें तो शेखचिल्ली, चोर, खरगोश... सभी आकर हँसने लगें...!

–नई दिल्ली, मो. 9873498873

साभार

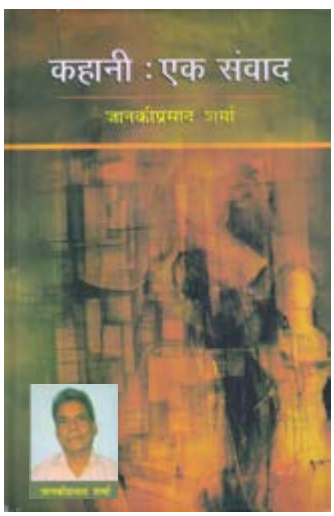

.....कहानी अंततः एक बात होती है जो घटना-स्थितियों के कलात्मक संयोजन और तदनुरूप भाषा के ज़रिए कही जाती है । बात को अर्थसक्षम और प्रभावपूर्ण बनाने की प्रतिभा और युक्ति नहीं है तो कथाकार के नए से नए कथ्य और विचारों की पाठक के लिए कोई सार्थकता नहीं रह जाती । भाषा को एक सार्थक बात में तब्दील करने की कला विरले कथाकारों में होती है। 'फ़िराक़' ने ठीक ही कहा है- 'सब में कहाँ बातों के क़रीने !'

दिल्ली,मो. 09811517897

कहानी

विदूषक

साभार

सत्येन्द्र शरत् की कहानियों को पढ़ने पर यही प्रतीति होती है कि कहानीकार ने सामाजिक यथार्थ को बहुत पास से और बहुत बारीक़ी से देखा है। उसने जिन मनोवैज्ञानिक तथ्यों का विश्लेषण और चित्रण इन कहानियों में किया है, वे लेखक के स्वयं अनुभूत तथ्य हैं।

कहानियाँ पढ़कर विज्ञ पाठकों की पहली प्रतिक्रिया यही होगी कि कहानीकार उन्हें बड़ी सफल आत्मीयता और विश्वास के साथ कहानी के आरंभ से अंत तक अपने साथ बिना उबाये हुए ले चलने की क्षमता रखता है। शैली की यही सुबोधगम्यता कहानीकार की विशिष्ट उपलब्धि है।

सधी कलम से लिखी गई इन कहानियों में अनावश्यक विवरण नहीं है। कहानीकार ने शिल्पी की तरह बारीक़ी और सावधानी से प्रत्येक कहानी का अंकन किया है। – –संपादक

स्व. सत्येन्द्र शरत

बचपन में मुझे हँसना और हँसाया जाना बहुत अच्छा लगता था। किसे अच्छा नहीं लगता ?... यह तो बाद में ही ऐसा होता है कि हममें से अधिकतम प्राणी शिक्षा, अपने पद, अपने सामाजिक स्थान और अपने ऊपर लदी जिम्मेदारियों के कारण हँसना भूल जाते हैं और कोशिश कर हँसाये जाने के बावजूद उस उन्मुक्त भाव से नहीं हँस सकते, जैसे बचपन में हँसा करते थे। बल्कि उसके स्थान पर गम्भीरता से लदी एक संक्षिप्त-सी मुसकराहट चेहरे पर फैलाकर जैसे उसके औचित्य को सिद्ध करते हुए यह कहने की चेष्टा करते दीखते हैं, "माफ़ कीजिये, अब मैं हँस नहीं सकता, महज मुसकरा सकता हूँ... क्योंकि हँसना अब मुझे निहायत ओछी हरक़त लगती है।"

मुझे हँसना ओछी हरकत तो नहीं लगती, किंतु यह सत्य है कि मैं अब चाहने पर भी उस तरह ठठाकर नहीं हँस सकता, जैसे मैं अपने कष्ट - पूर्ण, अभावग्रस्त किंतु सुखद बचपन में हँसा करता था और यह भी एक विचित्र सत्य है कि मुझसे, पेट में बल पड़ जाने वाली मेरी हँसी के छीने जाने में सबसे बड़ा हाथ उसी व्यक्ति का है जो मुझे हँसाते-हँसाते दुहरा कर दिया करता था।

मेरे शहर देहरादून में तीन मेले होते थे और तीनों में ऐसे ही भीड़ होती थी जैसी अब शाम के समय सिनेमाघरों के सामने होती है। पहला मेला शिवरात्री पर होता था, टपकेश्वर महादेव के मंदिर के ऊपर वाले मैदान में, दूसरा गुरु रामरायजी के गुरुद्वारे के चारों ओर मार्च के महीने में, और तीसरा होता था रामनवमी पर राजपुर में अम्बिका देवी के मंदिर के नीचे वाली क्यारियों में। आह्लादपूर्ण चेहरे लिये बच्चे, बूढ़े और बड़े सभी अत्यंत उल्लास के साथ इन मेलों में सम्मिलित होते थे। अब तो उस तरह का आह्लाद और उल्लास कहीं भी देखने को नहीं मिलता - शादी - बारात तक में नहीं। अब तो खुशी से अधिक खुशी का दिखावा किया जाता है।

तीनों मेलों में एक छोटी-सी थेठर कंपनी आया करती थी। बच्चों से उस समय' की इकन्नी और बड़ों से 'उस समय' की दुअन्नी लेकर आधे-पौने घंटे के शो में 'थेटर' वाले कुछ जादू के खेल, कुछ हैरत अंगेज़ तमाशे, पारसी ड्रामों के कुछ चुने ट्रेजिक और कॉमिक दृश्य, दो-तीन गाने - सोलो और डुएट - और एक- आध नाच 'मुझे मियाँ मिला है मसालेदार, मेरी बीबी बड़ी है चटाखेदार !' जैसे गानों के साथ अदल-बदलकर पेश किया करते थे। कई तरह की बोलियाँ बोलने वाला 'आवाज़ का जादूगर' और पूरे सौ मर्दाने-जनाने काम करने वाला तोता भी अपने करतब दिखलाया करता था। गैस के हँडों से आलोकित उस अधफटे तम्बू में बेर और मूंगफलियाँ खाते व्यक्तियों से ठसाठस भरे उस वातावरण में बीड़ी- सिगरेट के धुएँ के बीच फटी दरी पर बैठ इस तमाशे को देखने में जो आनंद आता था उसका शतांश भी अब एयर-कंडीशंड हॉल में पुश-बैक कुर्सियों पर पसरकर अच्छे-से-अच्छे नाटक या फिल्म देखने पर भी नहीं

प्राप्त होता !... क्या हो गया है हमें ? जीवन की क्रूर विभीषिकाओं ने हमारे रस खींचने के समस्त उपकरणों को मार्फिया क्यों दे दिया है ?... क्या अब हम कभी पहले जैसे नहीं हो पायेंगे ?

शो शुरू होने से पहले मेन एंट्रेन्स के पास बने एक छोटे-से मचान पर टिकटों और पैसों का बक्सा लिये बैठे मैनेजर के पास वही व्यक्ति खड़ा रहा था, जो मुझे बहुत हँसाया करता था। वह एक अधेड़ और मोटा-सा व्यक्ति था जो चारखाने का एक सलवार पहने रहता था जो रबर के काले मोटे गैलिस से उसके कंधों से अटका रहता था। हां, उस चारखाने के सलवार का एक पांयचा दूसरे से ऊंचा था और सलवार में भिन्न-भिन्न रंगीन कपड़ों के कई पैबन्द लगे हुए थे। उसके सिर के खिचड़ी बाल चारों ओर बिखरे रहते थे, जिनके बीच उसकी उस्तरे से साफ करवायी हुई चाँद बड़ी अजीब-सी दीखती थी। उसकी दायीं आँख का गोला, जिसमें जाला या फफोला था, लटककर बाहर आ गया था। दोनों गालों पर पुते लाल-सफेद रंग के बीच उसकी काले रंग से पुती चौड़ी नाक उसके गेट- अप को एक अनोखा ही रंग देती थी। सिर पर अकसर एक खाकी-सा पेशावरी कुलहा रहता था, जिसे बीच-बीच में उतारकर वह अपनी घुटी चाँद लोगों को दिखलाया करता था और फिर उसी कुलहे से पंखे की तरह अपने को हवा किया करता था। उसके बाएँ हाथ में टीन का एक 'धूतुक' रहता था जिसे मुँह से सटाकर वह 'ओए ! ओए! मजेदार खेल, करामती तोता!' 'जहरे इश्क' ड्रामा ! परियों का नाच ! मुँह से आग निकालने वाला बंगाल का जादूगर ! नब्बू का कॉमिक! मास्टर फितरत की अदाकारी !... बड़ों से दो आना। बच्चों से एक आना। और गोद के बच्चों को मुफ्त। शो शुरू होने वाला है। टिकट इधर मिलता है। ' आदि घोषणाएं चिल्ला-चिल्लाकर सुनाकर मेले की व्यस्त भीड़ को अपनी ओर आकर्षित किया करता था। लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह और भी मजेदार हरकतें किया करता था। दाएँ हाथ में पकड़े बाँस के खोखले लट्ठे से वह सामने खड़ी भीड़ को जतलाकर, अकसर गंभीरता से टिकट बेचते मूंछों वाले मैनेजर के कंधों पर कस-कसकर प्रहार किया करता था, किंतु सदैव ही वह बांस मैनेजर को न लगता, उलटकर विदूषक को ही बुरी तरह लगता और अपने ही प्रहार से आहत हो विदूषक कभी मचान से नीचे गिर जाया करता था, कभी बच्चों की तरह फूट-फूटकर नकली तौर पर रोने लगता था और इस नकली रोने को बीच में ही रोक अपना बदन खुजाते हुए अचानक ही हँसने लग जाता था। बीड़ी पीते हुए, वह लोगों को दिखलाकर, हमेशा ही उसका धुआँ मुँह के बजाय कान और आँख से निकाला करता था। इसी तरह की अनेक हरकतों द्वारा वह सामने से गुज़रती जनता को आकर्षित और आनन्दित करता था। शो शुरू होने पर वह अंदर चला जाया करता था और आध-पौन घंटा वहाँ लोगों को लोट-पोट किया करता था। थेठर के उस मंच पर होने वाले हरेक करतब की वह अपने भौंड़े, मगर विनोदी अंदाज़ में 'रनिंग कमेंट्री' करता था। और हमेशा ही लोग उसकी 'रनिंग कमेंट्री' सुनते हुए हँसते-हँसते दोहरे हो जाया करते थे।

मुझे विदूषक बेहद प्रिय था। और यह सत्य है कि मैं तीनों मेलों में इसलिए भी जाता था कि उसमें विदूषक को देख सकूं, और यह भी सत्य है कि विदूषक ने कभी मुझे निराश नहीं किया। हर साल वह नये गैग्स, चुटकुले ओर हंसाने के नये उपकरण ले आया करता था और लोगों को खूब हँसाया करता था - कई बार इतना, कि लोगों की आँखों में हँसते-हँसते आँसू आ जाया करते थे। थेटर खत्म होने पर मैं धक्का-मुक्की करती भीड़ के ठेले जाने पर बाहर आ तो जाता था मगर मेरा मन वहीं थेठर के अंदर विदूषक के पास ही रमा रहता था।

मुझे वह दिन भी याद है जब मैंने बहुत डरते-डरते अपने इस प्रिय कलाकार से टूटे-फूटे शब्दों में उसकी प्रशंसा करते हुए हाथ मिलाया था। मैं मन-ही-मन डर रहा था कि वह उपेक्षा के साथ मुझसे बात करेगा, किंतु जिस मुसकराहट और सहृदयता से उसने मुझसे हाथ मिलाया, और मेरे पूछने पर अपना नाम और संक्षिप्त परिचय दिया, उससे मुझे लगा कि वह अच्छा कलाकार ही नहीं, अच्छा आदमी भी है। नया शो शुरू होने वाला था इसलिए विदूषक मुझसे मेरा नाम और मेरी क्लास पूछ यह कहते हुए चला गया था, "बाबू ! मस्त रहना। मन लगाकर पढ़ना और बड़ा आदमी बनना। "

तब मैं पांचवीं कक्षा का विद्यार्थी था। गणेश से- हाँ, विदूषक का यही नाम था- मेरी अगली भेंट तब हुई जब मैं छठी क्लास का इम्तिहान देने वाला था। मुझसे हाथ मिलाते ही विदूषक मुझे पहचान गया। उसे यह भी याद आ गया कि पिछले वर्ष मैं पांचवी में था। उसने अपने आप ही कहा, "बाबू, अब तो छठी में आ गये होगे। " और मेरे हाँ सूचक सिर हिलाने पर उसने हँसकर अचानक ही बंदर की बोली बोलकर मुझे डरा भी दिया और देर तक मुझे हँसाया भी।

हर वर्ष मैं नयी क्लास चढ़ता गया और हर बार गणेश मेरे पास होने पर मुझे बधाई देते हुए चेताता रहा कि मुझे मस्त रहना है।

उस वर्ष मैं आठवीं की परीक्षा देने वाला था। गुरु रामरायजी के झंडे वाला मेला तीन-चार दिन चलता था। किसी कारणवश मैं पहले दिन मेले न जा सका, मगर मैंने दूसरी ही सुबह अपने एक

मित्र से, जो शाम को मेले गया था, मेले के और विशेष रूप से थेटर और गणेश के बारे में पूछा। मित्र ने बताया कि हर साल की तरह इस बार भी थेटर आया है, मगर उसका वह मूंछों वाला मैनेजर बदल गया है। गणेश अब भी उसी तरह धूतुक लेकर बीड़ी का धुआँ कान और आँख से निकालते हुए लोगों को हँसाकर थेटर देखने के लिए आमंत्रित करता है। सुनते ही मेरा मन हुआ कि अभी जाकर गणेश को 'ओए! ओए!' करते हुए देखूँ, मगर मैंने अपनी इस बलवती इच्छा को शाम तक के लिए दबा लिया।

किंतु झुटपुटा होने पर जब मैं मेले में गया तो थेटर मौजूद था। पैसों की पेटी लिये लाल-लाल आँखों वाला राक्षस-जैसा एक आदमी टिकट बेच रहा था, मगर गणेश वहाँ मचान पर न था। उसकी जगह एक दुबला-पतला लड़का नकली छातियाँ लगाये जनाने वेश में शरमाने और मोहित होने का भौंडा नाट्य कर रहा था। गणेश कहीं नहीं था और थेटर उसी सफलता के साथ अपना शो दिखा रहा था। कोई व्यक्ति गणेश या उसके बारे में कुछ बताने के लिए इच्छुक नहीं दीख रहा था। मैं हताश भाव से वहाँ से लौट आया और मेले का चक्कर लगाने लगा। आज मेला मुझे बहुत ही फीका और निर्जीव लग रहा था।

थककर उदास भाव से मैं सजी-धजी दूकानों के पीछे फैले शांत सरोवर की ओर बढ़ गया और वहाँ सीढ़ियों पर बैठ गया। सहसा मेरी दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी, जो मुझसे काफी फासले पर सिर झुकाये बैठा तालाब के पानी से अपना मुँह धो रहा था। मैं धीरे-धीरे उसके पास बढ़ आया। मेरा दिल धक-धक करने लगा। मेरी ओर पीठ होने पर भी मुझे विश्वास हो गया कि वह व्यक्ति गणेश ही है।

मेरी आहट सुन गणेश ने मेरी ओर गरदन घुमायी। उसकी आँख से खून बह रहा था और तमाम बदन पर स्पष्ट दीखने वाली चोटें थीं। कपड़े फटे हुए थे और चेहरा सूजा हुआ था। क्षण मात्र में मैं समझ गया कि थेटर के नये मालिक ने गणेश को - थेटर के पुराने, प्रिय और सफल विदूषक को मार-पीटकर नौकरी से निकाल दिया है। मुझे पहचान गणेश के मुँह से भर्राई आवाज़ में 'बाबू !' शब्द निकला और तब सिर नीचा किये हुए वह इस तरह फूट-फूटकर रोने लगा जैसे बचपन से अब तक उसके साथ की गयी विधाता की समस्त ज्यादतियाँ उसे इसी समय याद आ गयी हों... और वे सब पुरानी-नयी चोटें अचानक ही जोरों के साथ दुखने लगी हों... गणेश रोता रहा और मैं खड़ा अपने प्रिय विदूषक को - जिसने मुझे हँसना सिखाया था - रोते हुए देखता रहा।

और शांत सरोवर के किनारे उस अशांत विदूषक को- जिसने वर्षों लोगों को हँसाने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया था - भाग्य की विचित्र विडम्बना पर रोते - हुए देखते समय मुझे एक विचित्र सी अनुभूति हुई कि यह संसार अत्यंत ही क्रूर और निर्मम है और यह नहीं चाहता कि इसमें मनुष्य खुश रहे, हँसे और हँसाये... मैं सोचने लगा कि भविष्य में हँसते समय मैं यह कैसे भुला सकूँगा कि मैंने उस व्यक्ति को फूट-फूटकर रोते हुए देखा है, जिसने जीवन में मुझे सबसे अधिक हँसाया था और जिसने मुझे पहली बार चेताया था और उसके बाद बार-बार चेताया था कि मुझे मस्त रहना है और बड़ा आदमी बनना है !... मस्त ! इस दुनिया में ?... और बड़ा आदमी! इस संसार में ? जहाँ आदमी को आदमी बनना तक मयस्सर नहीं...

और उसी दिन मुझसे मेरी हँसी छिन गयी-छिन क्या गयी, मुझसे छीन ली गयी। और यह सच है कि मैं अब चाहने पर भी उस उन्मुक्त भाव से नहीं हँस सकता, जैसे मैं अपने बचपन के उन चंद मधुर वर्षों में हँसा करता था...

कॉलेज के दिनों में हँसना-हँसना शगल था। बात-बात पर हँसना आदत सी बन गई थी; गंभीर से गंभीर बातों को हँसी मज़ाक में उड़ा देना जीवन शैली का हिस्सा बना हुआ था।

रोज़गार में चुनौतियों का कामयाबी के साथ, गम्भीरता से, तत्परता से, लग्न से, पूर्ण समर्पण से और कुछ कर गुज़रने के इरादे से नई-नई उच्चाईयों को छुने लगा। लेकिन - हँसी गायब हो गई। रिटायर होने के बाद योगा शिविर जाने लगा। जहाँ अन्य क्रियाओं के साथ- ज़ोर-ज़ोर से हँसना होता था– मेरी बदकिस्मती समझो कि खूब कोशिश के बाद भी मैं हँसने की क्रिया नहीं कर पाया। हँसने के अभ्यास से मैं वंचित हो चुका था। मेरे लाफिंग गलैण्ड्स मर चुके थे.... समझ में आया खुश रहना, हँसना-हँसाना एक आदत के सिवाय कुछ भी मा'कूल नहीं ..... **अज्ञात**

प्रतियोगिता हेतु कहानी

बनजारन

निशिगंधा

मैं उसी दिन मुंबई पहुँची थी। मुझे देर रात तक काम करते देख वह मेरे सामने आ खड़ी हुई, वही अपना संवलाया रंग और बड़ी-बड़ी काली आँखें लिए। वह बोली, "दीदी, यह देर रात तक आप क्या लिखती रहती हैं?" उसकी ओर देखकर मैंने कहा.. किताब, कहानी। वह बोली," हाँ मैंने सुन रखा है आपके बारे में। मैं अगर आपको अपनी कहानी सुनाऊँगी तो क्या आप उसे लिखेंगी, छपवाएँगी, किताब बनवाएँगी?" कुछ सोचते हुए वह फिर बोली,"क्या वह किताब आप मेरे हाथों में देंगी भी?" वह दोनों हाथ फैलाए मेरे सामने खड़ी थी जैसे मैं अभी उसके जीवन पर लिखी कोई किताब उसके हाथों में रख दूँगी। उसने तो मुझ पर जैसे प्रश्नों की झड़ी सी ही लगा दी। फिर वह बोली, "मेरी कहानी बहुत दु:ख भरी है। मैं तो बंजारन हूँ जी.. बंजारन। " मैं उसका चेहरा पढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

बंजारन शब्द सुन मुझे कभी पढ़ा हुआ पेस्टोरल नोमैड्स का विषय स्मरण हो आया; जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर हरियाली की तलाश में फिरते रहते थे। और जहाँ भी पानी व हरियाली दिखाई देते वहीं वे लोग डेरा डाल देते और कुछ दिन वहाँ बिता अपना डेरा उठा फिर किसी और हरियाली जगह की तलाश में निकल पड़ते।

यूँ भी बंजारा जाति की भरमार आज भी हमारे देश में अनेक जगहों पर दिखाई दे ही जाती है फिर वह जैसलमेर, जोधपुर हो या फिर उदयपुर। उनका तो पहनावा, रहन-सहन और चाल-ढाल ही बता देते हैं कि वह बंजारा जाति से हैं। काले, गोटे लगे घेरदार घागरे खुली पीठ पर डोरियों वाली चोली, रंग-बिरंगे फूलों वाली चुनरी व पैरों में जयपुरी जूती, शरीर पर ढेर सारे गिलट के गहने, और कोहनियों से ऊपर तक पहनी श्वेत चूड़ियाँ। यह लोग भी एक जगह से दूसरी जगह जा कहीं भी पड़ाव डाल अपने करतब दिखाते हैं और वहीं अपने साथ लाई गठरिया खोल गिलट के आभूषण बेच व कुछ दिन वहाँ रह वे एक बार फिर अपना ठिकाना बदल देते हैं।

सांची भी शायद इसी तरह की किसी जाति से थी। पिछले कई वर्षों से वह मुंबई में अपने पाँव जमा चुकी थी। उसकी तीन बेटियां, बेटा व पति उसके साथ यहीं एक छोटा सा कमरा लेकर रह रहे थे। उसका पहनावा देख आज शायद कोई कह न पाए कि वह बंजारा जाति से थी। मुंबई जैसे शहर में आकर तो सभी बदल जाते हैं पर उसका सांवला रंग, बड़ी-बड़ी बंजारों वाली काली आँखें और चोटी में गुंदे, लंबे, घने, काले केश उसके बंजारा होने का प्रमाण साफ दे रहे थे। उसकी चंचलता और बेबाकी से मैं वाकिफ थी; साथ ही बंजारों की तरह बाहर मंज़िलें तलाश करना शायद उसे विरासत में मिला था। यूँ उसका पहनावा पंजाबी ही था पर चेहरे-मोहरे से वह बंजारन ही दिखती थी। पर बात करते-करते उसके चेहरे के भाव बदलते रहते और कुछ कह पाना कठिन हो जाता वह कहाँ से थी और घाट-घाट का पानी पी उम्र के इस पड़ाव पर पहुँच वह क्या चाहती थी। जब वह मुझ से पहली बार मिली थी तो उसने मुझे अपना नाम कुछ और ही बताया था। साथ ही यह भी बताया था कि अपने जीवन काल में वह न जाने कितनी बार अपना नाम बदल चुकी थी। खुद में मेरी रुचि देख वह बड़ी बेबाकी से बोल उठी "जी मैं सिर्फ दस साल की थी जब मैं घर से भाग गई थी।" मैं विस्मित हो उसका चेहरा देखने लगी। वह इतनी बेबाकी से मुझसे यह सब क्यों बताना चाहती थी मैं समझ नहीं पाई। शायद अपनी ज़िंदगी में आए कठिन उतार-चढ़ाव से वह इतना ऊपर उठ आई थी कि अब उसे यह सब कहने में कोई संकोच नहीं हो रहा था। फिर वह न जाने क्यों मुँह पर हाथ रख कुछ उच्छृंखल सी हँसी हँस बोल उठी "मुझे तो अपना नाम बंजारन ही रख लेना चाहिए।"

मैं सोचने लगी क्या वह नहीं जानती थी यूँ घर से भाग जाना कोई अच्छी बात नहीं थी और फिर इस बात को किसी के सामने यूँ कहना। शायद उसकी परिस्थितियों ने उसे बेबाक बना दिया था और वह सचमुच इन बातों को नहीं समझती थी। वह एक बार फिर से अपनी कहानी सुनाने लगी बस यूँ ही तार से तार जोड़ते हुए, "हम चार बहने थीं और एक भाई। मैं सबसे छोटी थी। जीवन में

क्या हो रहा है हर बात से अनजान। शायद आज भी मैंने हर बात को जिस तरह से समझा है वह सही है या नहीं मैं नहीं जानती। "

मैं उस वक्त बहुत छोटी थी। कुछ भी समझती नहीं थी। पिता नहीं थे। माँ भी सिधार गई। परिवार बिखरने की कगार पर था। माँ की मृत्यु के बाद सारा कुटुंब जमा हुआ। हम बच्चों की परवरिश कौन करेगा? इस बात पर विचार हुआ। आखिर कौन पाल सकता था चार-चार बच्चों को एक साथ। बड़ी बहन को तो मौसी ले गई उस से छोटी को ताया जी बाकी बचे मैं और मुझसे बड़ी बहन उसे सब कैफरिया कहते थे। कैफरिया शब्द मेरे लिए नया था। मेरी प्रश्न भरी नज़र पढ़ वह एक बार फिर से बोली,"कैफरिया यानि, जिसे सुनाई नहीं देता। न उसे कोई अपने साथ ले जाना चाहता था और न ही मुझे। " बात करते-करते उसकी आँखें भर आईं, "हम दोनों ही शायद किसी काम की नहीं थीं। मैं छोटी होने के कारण और कैफरिया बहरी होने के कारण। भाई हमारा बड़ा था सो वह पहले से ही बाहर गाँव काम पर लग गया था। उसे जब माँ की मृत्यु और बिखरे हुए घर की खबर मिली तो दौड़ा चला आया था सब से मिलने। दोनों बहनों को मौसी और ताया जी के यहाँ से वापस लाया सब को एक साथ रखने की उसने एक कोशिश तो ज़रूर की थी पर गरीबी और जहालत इतने बड़े परिवार का भरण पोषण सिर्फ अपने जज़्बे के बलबूते पर उस अकेले के बस का नहीं था। फिर मौसी ने ही लड़की देख-दाख कर भाई की शादी करवा दी। शायद यही सोच कर कि घर में बहू आ जाएगी तो घर संभालेगी। पर भाभी तो अभी छोटी सी थी। सोलह साल की उम्र में ही बच्चे को जन्म दे जननी हो गई। उस वक्त मैं भी कहाँ इतनी बड़ी हो गई थी कि कुछ भी समझ सकती। नन्हे भतीजे को माँ के स्तनों से लगा देख स्वयं दूसरी ओर से मुँह लगा लेती। " उसकी ऐसी बातें सुन मैं एक बार फिर हैरान हो उसका मुख देखने लगी और वह हँस पड़ी। फिर वही बेबाक हँसी। मेरी प्रतिक्रिया देख हँसी रोक वह एक बार फिर से बोलने लगी," जी मुझे उस वक्त कोई समझ कहाँ थी। भरपेट खाना न मिलता तो खड़िया मिट्टी खा लेती। कुछ न हो तो भाभी द्वारा भाई के लिए बनाया सालन चोरी कर खा लेती और मिट्टी के सकोरे जंगल में फेंक आती थी। उस वक्त खाना मिट्टी के सकोरों में ही बनता था। "

अपनी कहानी के तार से तार जोड़ते हुए वह कहने लगी, "इस बीच मेरी बड़ी बहन की शादी भी हो गई, पर वही रोना उसे कोई खुशी हासिल नहीं हुई और वह सब छोड़-छाड़ कर एक बार फिर से भाई के यहाँ लौट आई। घर में किल्लत के हालात देख मौसी से रहा न गया और उसे पंजाब साथ लिवा कर ले गई। सोचा होगा काम में हाथ बंटाएगी। फिर कुछ दिन बाद ही बहला-फुसला कर अपने विधुर बेटे से उसकी शादी करा दी। सब समझ गए थे बहन को यूँ ले जाने में मौसी का अपना स्वार्थ निहित था। वह कोई दो साल बाद एक बार फिर से हमारे यहाँ आए और मेरी दूसरी बड़ी बहन को भी अपने साथ ले गए अपने दूसरे बेटे से ब्याह कराने। घर के बड़े यही बात करते रहे कोई हर्ज़ नहीं है इसमें। घर की लड़कियाँ घर में ही रहेंगी। उनका घर भी तो बस गया। आखिर है तो बिन माँ बाप की और यह बातें मैं इतनी कम उम्र होते हुए भी कुछ-कुछ समझने लगी थी।

इसीलिए तो कैफरिया वहीं रह गई भाई के पास। मैं दस साल की थी और वहाँ से भाग खड़ी हुई। उस वक्त मैं कैसे समझ सकती थी, कैसी राह पर चल निकली हूँ. मैं उससे यूँ ही पूछ बैठी, पर तुम यहाँ तक पहुँची कैसे? वह कहने लगी, "क्या बताऊं जी बहुत लंबी कहानी है। आज भी याद है देर रात तक पंजाब के उस छोटे से कस्बे के स्टेशन पर बैठ देर रात तक रोती रही थी। पुरानी बातें याद कर उसकी आँखें छलक उठी। वह एक बार फिर बोलने लगी मुझे टेशन पर यूँ ही बैठे देख एक बुजुर्ग माँजी की मुझ पर नज़र पड़ गई। मेरी हालत देख वह सब समझ गई और मुझ रोती हुई को अपने संग अपने घर ले गई। पूरे दिन धक्के खाए थे, उनके यहाँ पहुँच मुझे थोड़ी राहत सी ही मिली। आज भी सब याद है जी उन्होंने मुझे उस रात गुड़ और सत्तू खाने को दिए थे साथ ही मिट्टी के घड़े से शीतल जल भी पीने को दिया था। मुझे और क्या चाहिए था, घर से तो भाग ही आई थी और एक ही दिन की ठोकरों ने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया था। पर फिर भी रह-रह कर भाई के घर की याद आ रही थी। भाई-भाभी जैसे भी थे। उस घर में हम बाहर की दुनिया से तो सुरक्षित ही थे मैं समझ पा रही थी। अब तो वापस लौटना चाहती भी तो नहीं जा सकती थी। भाई-भाभी का एक बार फिर से सामना नहीं करना चाहती थी। समझ गई थी जो पीछे छूट गया, छूट गया। वहाँ वापस मुड़कर नहीं जाना। उस वक्त बस मन ही मन ठान ली थी अब तो चाहे कुछ भी हो जाए इन माँजी के चरणों में ही पड़ी रहूँगी। पूरे आठ साल मैंने उनके घर रहते हुए उनकी सेवा में गुज़ार दिए। दस साल की थी जब उनके यहाँ आई थी और तेरह की होते-होते घर के मर्दों ने मुझे अलग नज़र से देखना शुरू कर दिया था। मेरे हालात ने मुझे उम्र से पहले ही बड़ा कर दिया था। साथ ही सिखा भी दिया था इन सब से बच के रहना पड़ेगा। और इन सब बातों से बचने के लिए मैं माँजी के पीछे छिप उन्हें ही अपनी ढाल बनाती रहती। और रात.. रात में भी माँ जी के चरणों में ही पड़े- पड़े सो जाती। पर आखिर कब तक..?बरसात

की वह रात भुलाए से नहीं भूलती माँजी सिधार चुकी थी और मैं अठारह पार कर चुकी थी। उस रात, वह अपने हाथ से मेरा मुँह बंद कर हाथ पकड़ मुझे अपने कमरे में ले गया था और मैं.. मैं कुछ नहीं कर पाई थी। बस उसी रात सोच लिया था अब यहाँ नहीं रहना और अगले दिन सांझ, सबसे नज़र बचा जिस स्टेशन से उस घर में लाई गई थी उसी स्टेशन से जो भी पहली गाड़ी मिली उस पर चढ़ गई बिना कुछ सोचे, बिना कुछ समझे, बिना कुछ जाने कहाँ जाना है किसके पास और क्यों..? बस गाड़ी चल पड़ी तो मेरी सांस में सांस आई.. राहत की। साथ ही मुझे लगने लगा जैसे मैं बड़ी हो गई हूँ.. और शायद अब अपने आप को संभाल भी पाऊंगी। पर शायद यह इतना आसान नहीं था जितना मैं सोच रही थी। समझ गई थी जहाँ भी जाऊँगी मर्द जात से तो जूझना ही पड़ेगा। साथ ही जहाँ भी रहूँगी किसी न किसी आदमी का हाथ तो सिर पर होना ही चाहिए चाहे वह कैसा भी हो। वहाँ से निकलने के बाद मैंने इतनी जगह पड़ाव डाले हैं कि अब तो मुझे शायद ठीक से याद भी नहीं है, मैं कहाँ-कहाँ किस-किस शहर में रही। उसकी बातें सुन मुझे लगने लगा इसने तो नदी के बहाव संग बहना सीखा ही नहीं कभी। या कहो उसे कोई सिखाने वाला था ही नहीं कि नदी के बहाव के साथ कैसे बहा जाता है।

"दीदी सच बताऊं, अब मेरे दिल में थोड़ा चैन था। बहुत से लोग आए ज़िंदगी में। दिनों भूखे भी रहना पड़ा पर बंजारन हूँ न, कभी हार नहीं मानी। मुश्किल से मुश्किल परिस्थिति में भी स्वयं को उबार ही लेती थी। एक बार तो पूरी रात स्टेशन पर एक बड़ी सी सब्जी की टोकरी में छुप कर बिता दी और कुछ लोग हमेशा ऐसे भी मिले जो मदद करने आगे बढ़ आते। कभी पुलिस से बचाते तो कभी अपने घर में रात भर के लिए ही शरण दे देते। मैं भी चुपचाप वे जो भी देते खा लेती। "

पर ऐसे आखिर कब तक चलता? काम चाहिए था, ठिकाना चाहिए था। मुंबई के बारे में सुन रखा था, यह जगह उन लोगों की है जो लोग काम करना जानते हैं और मैं काम करना नहीं जानती थी। मुझे तो घर के काम के सिवा कुछ आता ही नहीं था फिर काम कौन देता। कौन हूँ... कहाँ से आई हूँ... कहाँ-कहाँ काम किया है पहले; इन सवालों के जवाब तो मेरे पास थे ही नहीं। थोड़ा रुक वह एक बार फिर से बोलने लगी, "दीदी जहाँ ज़िंदगी बहुत सबक सिखाती है वहीं ज़िंदगी में कोई न कोई मिल ही जाता है और ज़िंदगी की गाड़ी चल निकलती है। मेरी किस्मत से मुझे यह मिल गए। " मैंने एक बार फिर उसकी ओर नज़र उठाकर देखा तो वह थोड़ा मुस्कुराते हुए बोली, "'यह' माने 'यह' मेरे वे कई साल तक मुझे कहीं न कहीं काम दिलाते रहे। चाहे उनके अपने हालात भी अच्छे नहीं थे पर मेरे लिए तो वे खुदा ही साबित हुए। मुंबई जैसी जगह में काम मिल गया, साथ ही ठिकाना भी और धीरे-धीरे मैं इनकी ओर खिंचती चली गई। इन्होंने भी एक बार भी मुझसे नहीं पूछा मैं कौन हूँ... कहाँ की रहने वाली हूँ... कौन जात हूँ... कहाँ से आई हूँ... आगे-पीछे कोई है भी कि नहीं। फिर एक रोज़ मैंने इन्हें भी अपनी कहानी सुना ही दी। इनका मन मेरे लिए और पिघल गया। हम ने शादी कर ली। शादी के कुछ रोज़ बाद ही जब मैंने इन्हें कैफरिया के बारे में बताया तो यह भी भावुक हो गए। और हम दोनों ही अगली गाड़ी पकड़ के कैफरिया को ढूँढने निकल पड़े। गाँव गए, बहुत ढूँढा, पर वह नहीं मिली। पता चला भाई ने उसे घर से निकाल दिया था और वह कई दिन पगली सी मारी-मारी फिरती रही थी। उसके बाद उसे किसी ने नहीं देखा। " बहन को याद कर उसकी आँखें भर आई फिर वह कहने लगी,"बड़ी बहन माँ समान होती है। क्या ही अच्छा होता अगर मैं उसका ध्यान रख पाती। शायद किस्मत में नहीं था। "

वह फिर कहने लगी," दीदी सच बताऊँ तो मेरे पाँव ज़्यादा दिन कभी भी किसी जगह नहीं टिके। " मुझे लगा अपने घुमंतू स्वभाव व घाट-घाट का पानी पीने के कारण वह मुझसे ऐसा कह रही थी। वह फिर बोली," दीदी ऐसा पहली बार हुआ है कि जब से मैं यहाँ आई हूँ यहीं की होकर रह गई हूँ। जाने मेरे नसीब में क्या लिखा है ? सोचती हूँ क्या यही है मेरी मंज़िल। " शायद उसे नदी की उल्टी धारा संग रहने की आदत थी इसीलिए वह इस बात से शंकित थी आखिर वह अपना खेमा इस शहर में कब तक जमाए रख पाएगी। शायद उसके साथ अब ऐसा कभी ना हो। उसका यहाँ घर था, शौहर था, बच्चे थे। फिर भी उसकी बातें सुन-सुन मैं सोचने लगी क्या वह सचमुच किसी यायावर खानाबदोश क्लैन से वास्ता रखती थी। उसके हठी स्वभाव और कर्मठता को देखकर तो यही लगता था। शायद इसीलिए तो आज भी वह तत्पर रहती कोई भी काम अपने हाथ में लेने के लिए साथ ही कहीं भी जाने के लिए।

मैं अपने मित्र जिनके यहाँ में रह रही थी, सांची उनके यहाँ नित्य ठीक रात आठ बजे पहुँच जाती माँ जी की सेवा में। माँजी बूढ़ी हो चली थीं साथ ही उनका शरीर बिस्तर से लग चुका था। सहारा ले कर वे सिर्फ कुछ कदम ही चल पाती थीं। माँजी चाहे अपनी उम्र के आखिरी पड़ाव में थी पर सांची के लिए तो वे आज 'लाइफ लाइन' बनी हुई थीं। उसे उनकी सेवा करने का सौभाग्य जो प्राप्त था। आज यही काम उसकी रोजी-रोटी का ज़रिया बन

गया था। वह अपने काम में दक्ष थी। पर उसे यूँ काम करते देख मैं समझ नहीं पा रही थी वर्षों घाट-घाट का पानी पीने वाली इस तरह का सेवादार काम करने को तत्पर कैसे हो गई थी। काम बहुत ही कठिन था और जिस तरह वह माँ जी की सेवा करती कोई पारंगत ट्रेंड नर्स ही कर सकती थी।

उसे यह काम करते देख मैं सोचने लगी जो कुछ भी उसने बताया था उसमें तो यह काम शामिल नहीं था। फिर कहाँ सीखा होगा उसने यह सब। वृद्धा माँजी की सेवा करते हुए उनकी साफ-सफाई करते हुए गंध की परवाह किए बिना उसके माथे पर शिकन भी नहीं पड़ती थी। और रात-रात भर उठ वह कभी उन्हें वॉशरूम ले जा रही होती तो कभी उनके लिए चाय बना रही होती। मुझसे रहा नहीं गया तो एक रोज़ मैंने उससे पूछ ही लिया कहाँ सीखा यह सब? तो वह बोल उठी जी मैं ट्रेन्ड नर्स हूँ। जब मुझे पता चला इस काम में पैसा है साथ ही डिमांड भी है, तो मैं समझ गई यही काम एक ऐसा है जिसे कर मैं मुंबई में भली-भांति पाँव जमा सकती हूँ।

मुझ में अपनी रुचि देख वह एक बार फिर बोल उठी, "देखिए मैं मुंबई में पाँव जमाने की बात तो करती हूँ पर कुछ रोज़ पहले ही किसी ने मेरा हाथ देखते हुए कहा था तुम्हारी ज़िंदगी के जितने भी मुख्य काम है उन्हें जल्द पूरा कर लो ज़िंदगी का क्या भरोसा। " इतनी संजीदा बात पर भी वह अपनी आदत अनुसार ज़ोर से खिलखिला कर हँस पड़ी और मेरा चेहरा गौर से देखने लगी। शायद इस बात पर वह मेरी प्रतिक्रिया चाहती थी। जब मैं कुछ न बोली तो वह एक बार फिर हँस दी।

फिर वह अचानक बोल उठी,"मैं कम से कम अपनी छोटी बेटी की शादी तक तो जीना चाहती हूँ। वह बीस की होने जा रही है। " उसकी बात सुन मैं उसका चेहरा देखने लगी... ऐसा क्यों कह रही हो तुम..? तुम्हें तो अभी बहुत जीना है, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है। देखने में वह चालीस से कम की ही लग रही थी। वह फिर बोल उठी, "ज़िंदगी में इतनी दुख झेले हैं यही लगता है जाने कब क्या हो जाए। मैं रहूँ या न रहूँ। कुछ सोचते हुए, उसने अपनी हथेली मेरे सामने फैला दी व बोली.. क्या आप हाथ पढ़ना जानती हैं? ज़रा देखिए तो। मुझे लगा शायद उसे किसी ने कुछ कह दिया है। उसकी हाथ की रेखाओं पर सरसरी नजर डाल उसे तसल्ली देने के लिए मैं बोल उठी.. तुम्हारे हाथ की रेखाएँ तो बहुत साफ और गहरी हैं। तुम बहुत दिन जीने वाली हो। यूँ कहने से या मांगने से मौत नहीं मिलती। अपना-अपना जीवन तो जीना ही पड़ता है। सुखों के साथ भी और दुखों के साथ भी।

तभी अचानक मेरी नज़र उसके हाथ पर गुदे गोदना पर चली गई। विस्मित हो मैंने कहा देखें देखें क्या लिखा है? अपनी बड़ी-बड़ी काली आँखों से मेरी ओर देख उसके होंठ जैसे सिल गए। मुझे लगा शायद उसके किसी प्रेमी ने अपना नाम जबरन उसकी कलाई पर गुदवा दिया होगा। पर नहीं। मेरी विस्मितता देख कुछ स्मरण कर वह बोली.. जी मेरे भाई का नाम खलील है उसकी जगह सलिल खुद गया है। भाई का नाम लेते ही उसकी आँखें छलछला गई। मुझे लगा बरसों पहले परिवार द्वारा छोड़ी हुई लड़की कैसे अपने भाई का नाम अपने हाथ में आज भी गुदवाये फिर रही थी। मैं बोल उठी खलील तो उर्दू का शब्द है। क्या तुम मुसलमान हो? वह बोल उठी,"मैं हिंदू हूँ न मुसलमान हूँ और न ही इसाई। मेरी न कोई जात है न धर्म। मैं तो बंजारन हूँ बंजारन। मैं उसका चेहरा एक बार फिर से गौर से देखने लगी। गंदुमी चेहरे पर काली, बड़ी-बड़ी आँखें कैसे जड़ीं थीं।

मेरी ओर देख वह फिर कहने लगी, "दीदी आज मैं आपसे यह सब कह तो रही हूँ पर मन.. मन तो यही चाहता है मेरा भी कि मेरा कोई मायका होता। भाई होता जो मुझे राखी पर बुलाता, संदेशा भेजकर। अभी भी मन चाहता है एक बार गाँव जाकर देख ही आऊँ, शायद मेरे भाई को मेरी याद हो और उसके मन में भी कोई ऐसी आस हो। शायद मेरी बड़ी बहन मुझे ढूँढते हुए आ ही जाएगी किसी दिन। उसकी बातें सुन मैं भी थोड़ा भावुक होने लगी। उसे सांत्वना देते हुए मैं बोल उठी, उस रोज़ तुम कह रही थी न कि मैं तुम्हारे लिए कुछ लिखूं कहानी या किताब। तुम्हारी बातें सुन देखो मैंने तुम्हारे लिए क्या लिखा है:

मुड़ नहीं आना देस तेरे बाबुला
घर होया तेरा परदेस
चाहे बिरहा कलेजा हुम-हुम खावे
नहीं भेजना कोई संदेस।

मेरी कही हुई पंक्तियाँ शायद उसे कुछ-कुछ समझ आ गई और वह मुख पर आँचल डाल सुबकने लगी। मैं उसका दर्द समझ पा रही थी। इंसानी संवेदनाएं तो सब में एक सी ही होती हैं। फिर वह वहाँ से उठ माँजी के कमरे में चली गई उनकी तीमारदारी करने। उसकी ड्यूटी सुबह आठ बजे तक की थी।

वह सुबह ड्यूटी समाप्त कर घर जाने को तैयार हो रही थी तो बोल उठी.. आज दरगाह तो ज़रूर जाऊँगी। उसकी बात सुन मुझे स्मरण हो आया, उसने तो कहा था मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान। मेरी प्रश्नवाची दृष्टि पढ़ वह फिर बोली.. मेरा क्या है जी आज दरगाह जाना चाहती हूँ तो जरूर जाऊँगी पर साथ ही हर रोज़ सड़क के हर मोड़ पर पेड़ के नीचे बने छोटे से छोटे देवालय में मैं माथा टेकना नहीं भूलती हूँ। बृहस्पतिवार का दिन तो यूँ भी मेरा चर्च का दिन होता है। उस दिन गरीबों में खाना बंटता है, तो मैं भी मदद करने चली जाती हूँ। उसकी साफगोई देख मैं हैरत से एक बार फिर से उसका चेहरा पढ़ने का प्रयत्न करने लगी। वह फिर बोल उठी.. मुझे नवरात्रों में बनने वाला भोज बड़ा स्वादिष्ट लगता है। नवरात्रि हम हर साल अपनी मैडम के साथ मनाते हैं पर साथ ही ईद पर मेरे घर में सेवैयां ज़रूर बनती हैं।

उसकी बातें सुन मुझे लगने लगा तबीयत से वह शायद अभी भी बंजारा ही थी और किसी यायावर खानाबदोश बंजारे की रूह उस में समा उसे यह सब करने को विवश कर रही थी और यह आजाद खयाली उसे बंजारों से शायद विरासत में ही मिली थी।

साथ ही मुंबई जैसे बड़े शहर में पाँव जमाने के बाद वह समझ गई थी नदी के संग-संग बहना सीखना ही होगा। नदी की उल्टी धारा संग बहने वाले कब पार पहुँच पाते हैं। मुझे लगने लगा मुझसे अपनी कहानी कहने के बाद उसके हृदय का सारा आक्रोश सारी वेदना समाप्त हो गई थी। साथ ही उसका चित भी अब शांत था।

वह चली गई तो मैं देर तक उसके विषय में सोचती रही। उसकी ज़िंदगी के विषय में। कितने उतार-चढ़ाव देखे थे उसने। दुख थे, कुंठा थी, विवशता और शायद थोड़ी खुशी भी। फिर भी उसकी कहानी सुनते-सुनते मुझे लग रहा था जैसे उसकी जीवन यात्रा व अंत: यात्रा से गुज़रते हुए मेरे समक्ष नाट्यशास्त्र के नौ के नौ रस सार्थक हो रहे थे। कैसे वह बातों बातों में अपनी कहानी सुनाते-सुनाते नौ के नौ रसों की अभिव्यक्ति कर रही थी। बचपन से ही उसकी वह डेरिंग यानि साहस। कम उम्र में निर्णय ले घर छोड़ना.. उत्साह व वीर रस की अभिव्यक्ति करता। तेरह की होते-होते लोगों की लोलुपता व्यभिचार जैसे जुगुप्सा और विभत्स रस की अभिव्यक्ति। साथ ही रौद्र रस, उसका क्रोध लोगों के व्यवहार की अति के कारण। अब यह क्या कहेगी, क्या करेगी, मुझ में ही विस्मय की स्थिति उत्पन्न करता रहा था। उसका मुख पर आँचल डाल कर रोना करूणा जगाता है और सुबह आठ बजे घर जाते वक्त तैयार होना। चेहरे पर थोड़ा रंग बिखेरना, दर्पण में अपना चेहरा निहारना, श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति करता साथ ही कहानी कहते-कहते उसका यूँ हँस देना हास्य भी उत्पन्न करता है। और अंत में उसके जीवन का ठहराव। मुंबई जैसे शहर में पाँव जमा कर रहना उसमें शांत रस जगाता है।

उसकी कहानी यूँ लिखने के बाद मुझे थोड़ी प्रसन्नता सी ही हो रही थी। शायद उसकी तथाकथित कहानी लिख मैंने उसके मन की मुराद पूरी कर दी थी। **–नई दिल्ली, मो. 9810957504**

अब मिरे भाई की चिट्ठी नहीं आया करती
ऐसे रिश्तों में तो तल्ख़ी नहीं आया करती

फूल बनना है तो फिर बूए–वफ़ा पैदा कर
काग़ज़ी फूल पे तितली नहीं आया करती

एक दिन पूछूंगी नदिया से कि क्यों साथ तेरे
अब मेरे गांव की मिट्टी नहीं आया करती

आजकल याद नहीं करते हो हम को शायद
भूल कर भी हमें हिचकी नहीं आया करती

जब वो परदेस को जाता है तो उस के पीछे
नींद आती तो है, गहरी नहीं आया करती

कुछ तो आसार हुआ करते हैं तूफ़ानों के
बिन इशारे के तो आंधी नहीं आया करती

कुछ तो है बात जिसे दिल में छुपा रक्खा है
यूं लबों पर तो ख़मोशी नहीं आया करती

लोग जो बद भी हैं बदनाम भी इस दुनिया में
उनके घर देखा है डोली नहीं आया करती

∞

कठूआ, जम्मू कश्मीर

प्रतियोगिता हेतु कहानी

सेफ्टीपिन

डॉ. नीरू मित्तल 'नीर'

"राजेश को कह देना गुप्ता जी के यहाँ चला जाएगा, कुछ इंश्योरेंस के कागज़ साइन करने हैं, कर आएगा।"

"सुन तो रहा है, अपने आप जवाब दे देगा" माँ ने कहा। फिर राजेश की तरफ़ मुखातिब होकर बोलीं, "बता दे पापा को... कब जाएगा?"

"चला जाऊँगा... बेकार का काम है, जब फुरसत मिलेगी, चला जाऊँगा।"

"साहबज़ादे को हर काम बेकार का लगता है। मैं भी हड्डियाँ घिस-घिस कर थक गया हूँ," कहते हुए शर्मा जी ने, कहीं बात ना बढ़ जाए, इस डर से बाहर की तरफ़ का रास्ता पकड़ा।

राजेश कोई भी बात होती तो माँ को ही बताता, पिता से कोई बात सीधे तौर पर नहीं करता था। माँ आगे पिताजी से वह बात कहती। इसी तरह शर्माजी भी राजेश को कहने वाली हर बात द्रौपदी को कहते और द्रौपदी उसे आगे राजेश को कहती। छः फुट का लंबा-चौड़ा नौजवान, सुतवां नाक, गोरा रंग, चौड़े कंधों वाला राजेश, जबसे बड़ा हुआ है, पिता-पुत्र के बीच में बेवज़ह ही एक खाई-सी बन गई है। इस अनदेखी खाई का कोई कारण, कोई उत्पत्ति बिंदु, द्रौपदी को नज़र नहीं आता। पता नहीं क्यों और कैसे समय के साथ-साथ राजेश और उसके पिता शर्मा जी के बीच में एक अनबोलेपन की खाई सी बनती चली गई, जिसे द्रौपदी भरने की भरसक कोशिश करती, पर कभी भर न पाई। कभी उसे लगता, "शर्मा जी सारे परिवार का भार उठाते-उठाते, समय से पूर्व ही बूढ़े हो गए हैं। सचमुच उनके कंधों पर परिवार के पालन का बहुत भार है और राजेश को उस भार को बंटाने की कोशिश करनी चाहिए। कम-से-कम वह अपने खर्चे तो कम कर ही सकता है।"

फिर कभी उसे लगता, "जवान बेटा कुछ ख़्वाहिशें तो रखेगा ही... अब जवान होते पुत्र की हर ख़्वाहिश को तो रौंदा नहीं जा सकता। दूसरे बच्चों को देखकर अगर थोड़ा-बहुत फ़ालतू खर्चा कर भी लेता है, तो क्या है? बड़ा होगा तो समझदारी अपने आप आ जाएगी।" इसी उहापोह मे फँसी द्रौपदी दोनों ओर के वार्तालाप के बीच का तंतु बनी रही।

कभी राजेश कहता– "पापा से कह देना कल फ़ीस जमा कराने की आख़िरी तारीख़ है।"

शर्मा जी चुपचाप शाम को ऑफिस से आते हुए एटीएम से पैसे निकाल लाते और लाकर द्रौपदी के हाथ में थमा देते। द्रौपदी हर बार राजेश को फ़ीस देते हुए कहती- "सारा दिन तेरे लिए ही खटा करते हैं। कभी दो घड़ी उनके पास बैठकर उनका हाल-चाल ही पूछ लिया कर। उनका भी दिल हल्का हो लेगा कि मेरा बच्चा मुझसे बात करता है।"

"क्या बात करूँ मैं उन से... मेरी कोई बात उन्हें समझ नहीं आती... ना ही वो समझने की कोशिश करते हैं... मुझे नहीं करनी उनसे कोई बात," राजेश मुँह बिचका कर कहता।

रोज़मर्रा की बातें ही नहीं, घर के बड़े-बड़े फैसले भी आपस में सीधी बात किए बगैर ही ले लिए जाते। छत पर पड़े मकड़ी के जालों को साफ़ करते हुए द्रौपदी सोच रही थी कि यह कैसा मकड़जाल उसके आसपास उलझा हुआ है। वह एक मकड़ी की तरह इस जाल में फँसी हुई है, न पिता ही कुछ समझने को तैयार हैं, न पुत्र ही। अक्सर दोनों के अनबोलेपन से द्रौपदी खीज जाती।

"तुम दोनों सुधर जाओ... जो बात हो, आपस में किया करो, मुझे बीच में मत डाला करो। जब बात तुमने कहनी ही है, और दूसरे ने जवाब देना ही है, तो मुझे बीच में क्यों डालते हो? किसी दिन मैं नहीं रही तो किसको डालोगे बीच में?" बस इसी तरह द्रौपदी झल्लाती भी रहती और दोनों के बीच में डाकिया भी बनी रहती।

जब राजेश को नया लैपटॉप लेना था, तब भी उसने शर्मा जी से सीधा नहीं कहा, माँ के माध्यम से ही सारी बातें होती रहीं। कौन सा लैपटॉप लेना है, कितने का लेना है, कहाँ से लेना है, शर्मा जी ने किसी बारे में अपनी कोई राय नहीं दी। राजेश ने एक लाख रुपए का लैपटॉप पसंद किया तो शर्मा जी ने फेस्टिवल एडवांस लेकर पैसा इकट्ठा कर लिया, पर पुत्र को नहीं बताया कि इतना खर्च करने की उनकी हैसियत नहीं है।

सुबह से शाम तक ऑफिस में खटते हुए शर्मा जी का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था। एक दिन मियादी बुखार ने घेर लिया। राजेश दौड़ कर डाक्टर बुला लाया। सारी दवाइयाँ लाकर माँ को समझा दीं कि कब-कब और कैसे देनी हैं। पंद्रह दिन पिता के कमरे में ही सोता रहा। शर्मा जी ज़्यादा कमज़ोरी के कारण चल नहीं पा रहे थे। उन्हें बाथरूम तक ले जाता, परंतु मजाल है कभी पिता ने अपने मुँह से एक भी शब्द कहा हो, या बेटे ने ही कभी पूछ लिया हो कि अब तबीयत कैसी है।

एक दिन राजेश माँ से मिलवाने के लिए एक लड़की को लेकर आया। लड़की सुंदर, सुशील और अच्छे घराने की थी। द्रौपदी को पसंद आ गई परंतु फिर भी वह चाहती थी कि राजेश अपने पिता से इस बारे में स्वयं ही बात करे। कई दिन तक उसने कोई बात नहीं की तो एक रात द्रौपदी ने ही शर्मा जी के कान में यह बात डाल दी। शर्मा जी सीधे-सादे और सरल व्यक्ति थे। उन्होंने कोई ख़ास प्रतिक्रिया नहीं दी, सिर्फ़ इतना कहा- "ठीक है, शादी उसे करनी है। अगर उसे पसंद है तो हमें क्या एतराज़ हो सकता है। और वैसे भी हमारी पसंद की हुई लड़की से इसकी नहीं बनी तो सारी ज़िंदगी हमें कोसता रहेगा। अपनी पसंद से शादी करेगा तो कल को हम पर कोई आरोप नहीं लगा सकता।"

द्रौपदी पति द्वारा दी गई दलील से हतप्रभ रह गई। भला माँ-बाप के द्वारा पसंद की गई लड़की से ना बनने पर कोई पुत्र उन पर ही आरोप लगाता है क्या?

कुछ दिनों बाद हिमाँशी के मम्मी-पापा आकर शर्मा जी और द्रौपदी से मिल गए। उन्हें भी घर-बार सीधा-सादा और खानदानी लगा। शर्मा जी और द्रौपदी की तो कोई खास ख़्वाहिश भी नहीं थी। बड़े साधारण तरीके से राजेश और हिमाँशी का विवाह हो गया। शादी में भी पिता-पुत्र के बीच में सीधी बातचीत नहीं हो पाई और हिमाँशी इस घर की बहू बनकर आ गई।

खुद द्रौपदी ने हिमाँशी को पिता-पुत्र के बीच में चलते हुए अनबोलेपन के बारे में समझाते हुए कहा था- "बेटा, आज तक मैं इन बाप-बेटे के बीच में संवाद की कड़ी बनी हुई थी। अब कहीं ऐसा ना हो कि तुम भी सिर्फ़ एक कड़ी बनकर ही रह जाओ। तुम कोशिश करना कि दोनों के बीच में सामान्य बातचीत हो।"

हिमाँशी ने बड़े सकारात्मक ढँग से हाँ में सिर हिलाया जिससे द्रौपदी कुछ आश्वस्त हुई। शुरू में हिमाँशी पिताजी का ध्यान रखती, उनको नए-नए स्वादिष्ट नाश्ते बना कर खिलाती। राजेश से भी अक्सर कहती कि आप पिताजी से बात किया करो। परंतु धीरे-धीरे हिमाँशी ने भी सब से ही बात करना कम कर दिया। अब वह अपनी नौकरी और अपने पति में मस्त रहती। द्रौपदी ही आगे चलकर हिमाँशी से थोड़ी बात कर लेती तो उसका जवाब दे देती थी।

ज़िंदगी अपने तय ढर्रे पर चल रही थी। द्रौपदी अपनी पुरानी दिनचर्या में व्यस्त थी। शर्मा जी पहले की तरह अपने दफ़्तर में व्यस्त हो गये। हिमाँशी और राजेश जैसे घर में रहकर भी नहीं रहते थे। बस एक ही बात का फ़र्क पड़ा था कि अब राजेश किसी भी बात के लिए पैसे नहीं माँगता और चुपचाप राशन-पानी, बिजली का बिल आदि का भुगतान कर देता। एक रात अचानक द्रौपदी के सीने में दर्द होने लगा। पहले तो कुछ देर उसने शर्मा जी को भी नहीं बताया। जब पीड़ा असहनीय हो गई तो उसके कराहने की आवाज़ सुनकर शर्मा जी की आँख खुली। सीने पर हाथ रखकर तड़पती हुई द्रौपदी को देख वह हड़बड़ा गए। उन्होंने राजेश को आवाज़ लगाने की कोशिश की। गले की सारी माँसपेशियाँ जैसे अकड़ गईं। कई सालों से उन्होंने कभी राजेश को आवाज़ नहीं लगाई थी। आज उनके कंठ में जैसे पत्थर फँस गया हो, बहुत ज़ोर लगा कर घबराई हुई बारीक सी आवाज़ निकली- "राआआ..जे$$"

उन्होंने फिर से शरीर की सारी ताकत को एकत्र करके आवाज़ लगाई- "राआआ....जेए ए ए.....श"

राजेश दौड़ता हुआ अपने कमरे से आया, द्रौपदी पसीने में लथपथ हो गई थी, उसके सीने में बेहद दर्द था। राजेश उसे गोदी में उठाकर अस्पताल ले गया। वह पूरी दौड़-भाग कर रहा था। शर्मा जी पत्थर बने हुए आईसीयू के बाहर बैठे रहे। डाक्टर द्रौपदी का बाईपास ऑपरेशन कर रहे थे। शर्मा जी आकर जैसे बैठे थे, वैसे ही बैठे रहे, तनिक भी नहीं हिले। डॉक्टरों ने अपनी पूरी कोशिश की। सारी रात शर्मा जी आईसीयू के बाहर बैठे रहे परंतु उनके और राजेश के बीच मौन पसरा रहा। दोनों अपने-अपने तरीके से मन ही मन प्रार्थना कर करते रहे और दिल में आने वाले बुरे ख्यालों को बार-बार दूर करने की कोशिश करते रहे। राजेश कभी उठकर शीशे में से झाँककर माँ को देखने की कोशिश करता, कभी वापस आकर बैठ जाता। शर्मा जी तो जैसे पत्थर की मूर्ति बन कर बैठे रहे।

डॉक्टरों की सभी कोशिशें नाकाम रहीं... द्रौपदी का शव एँबुलेंस में रखा जा रहा था, उसके एक तरफ़ राजेश बैठा था, दूसरी तरफ़ शर्मा जी बैठे थे। जैसे बीच में बहती हुई नदी अचानक सूख गई हो और दोनों किनारे सूखी हुई नदी को उदासी भरी नज़रों से देख रहे हों।

आज क्रिया-कर्म के बाद राजेश अपने कमरे में बैठकर अपने बचपन के सुनहरे दिनों के बारे में सोच रहा था। माँ के बिना ऐसा लग रहा था जैसे घर को जोड़ने वाले सारे तंतु टूट कर बिखर गए हों। वह जानता था कि पिताजी बहुत अकेला और असहाय महसूस कर रहे होंगे, पर इतने सालों से उनसे सीधी बातचीत न कर पाने की वज़ह से अब वह बात करने में हिचकिचा रहा था। अंत में बहुत हिम्मत जुटाकर वह पिताजी के कमरे की चौखट पर जाकर खड़ा हो गया। पिताजी आराम कुर्सी पर बैठे हुए एकटक खिड़की से बाहर शून्य में देख रहे थे। अपने में खोए हुए शर्मा जी उसका आना नहीं जान सके। राजेश पहले चौखट पर खड़े-खड़े आँसू बहाता रहा और फिर एक छोटे बच्चे की तरह जाकर पिता से लिपट गया। दोनों की आँखों से गंगा-जमुना बह निकली। शर्मा जी भी सुबक-सुबक कर बच्चों की तरह रोने लगे। राजेश ने शर्मा जी को छोटे बच्चे की तरह बाँहों में भर लिया। आँखों से निकले इस सैलाब ने दोनों किनारों के बीच की दूरी मिटा दी। सामने रखी द्रौपदी की फ़ोटो अचानक मुस्कुराने लगी।

बिना वज़ह उधड़े हुए रिश्तों को जोड़ने वाली सेफ्टीपिन आज टूट गई थी और समय की सिलाई मशीन पर वह रिश्ता फिर से सिलने लगा।

डॉ. नीरू मित्तल 'नीर'

#40, सेक्टर 15, पंचकूला,

हरियाणा - 134113

Email: neerumittal58@gmail.com

मो. 9878779743

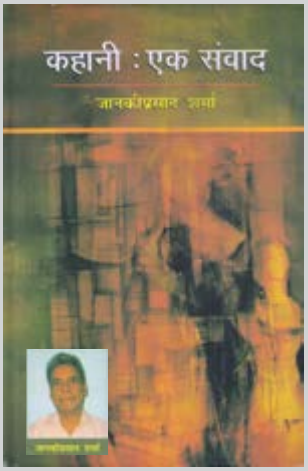

आलोचना के बीच से आज के कथा-सृजन की जो तस्वीर उभरती है, वह कहानियों की दुनिया से मेल नहीं खाती। इस तस्वीर में काले और सफ़ेद रंग ही नुमायाँ हो सके हैं। दूसरी- दूसरी रंग-छायाएँ ग़ायब हैं। सृजन के वैविध्य को रेखांकित न कर पाने के कारण आलोचना में एक गतिरोध - सा आ गया है। वैसे भी कहानी की एक सदी की यात्रा को देखते हुए उसकी आलोचना उतनी समृद्ध नहीं हो सकी है। अलबत्ता आलोचकों की बनिस्बत कथाकारों द्वारा समय-समय पर लिखी गई आलोचना की स्थिति ज़्यादा बेहतर लगती है।

देखा यह गया है कि बाज़ आलोचक एक कहानीकार के आरंभिक लेखन की बाबत पूर्व निर्धारित राय को उसकी बाद की कृतियों पर यथावत् लागू कर देते हैं। या एक कहानी विशेष की बाबत बनी राय को उसकी तमाम कहानियों पर चस्पाँ कर देते हैं। जबकि यह भी मुमकिन है कि कहानीकार का शेष लेखन इस राय को झुठला सकता है। कभी-कभी कहानीकार की महज़ निजी वैचारिक संबद्धता के आधार पर उसके लेखन की निंदा या प्रशंसा कर दी जाती है क्योंकि यह मान लिया जाता है कि उसकी कहानियों में यह गुण या विशेषता तो होगी ही। सबसे दुःखद स्थिति तब होती है जब एक मंच या समूह से दूर रहने के कारण एक रचनाकार विशेष को पढ़ने की जहमत ही नहीं उठाई जाती। ये विभिन्न बरताव आलोचक में पाठक के ह्रास को सूचित करते हैं।

युवा और युवतर पीढ़ी के लेखन से आलोचना की दूरी बढ़ी है। कविता की बनिस्बत कहानी - आलोचना में ज़्यादा ही। जिस तनाव और बेचैनी से गुज़र कर नई पीढ़ी के कथाकार लिख रहे हैं, उससे दो-चार होने का जोखिम आलोचना नहीं उठाना चाहती। जब हम कहानी की चर्चा करते हैं तो बीते कल के सृजन के प्रति अभिभूत और नई रचनाशीलता के प्रति शंकालु नज़र आते हैं। कुछ लोगों को प्रेमचंद और यशपाल के बाद कोई वीरानी -सी वीरानी ही महसूस होती है। न तो यह परंपरा का सम्मान है और न समकालीनता से जुड़ाव। बल्कि यह नई रचनाशीलता से किनाराकशी का एक सुविधाजनक तरीक़ा है। ये बातें मैं स्वयं को शामिल करके कह रहा हूँ। इसे कहानी - आलोचना की दोष-गणना न समझा जाए।

दिल्ली,मो. 09811517897

प्रतियोगिता हेतु कहानी

कनक ताई

हँसा विश्नोई

ट्रेन आ गई थी । सभी यात्री धीमी होती ट्रेन के रूकने की प्रतीक्षा करने लगे । उतरने वाले भी । चढने वाले भी । उतरने वाले यात्रियों के चेहरे की थकान स्पष्ट दिखाई दे रही थी तो चढ़ने वाले जोश में थे । कोई अपनों से मिल के आ रहा था तो कोई जा रहा था । उसी भीड़ में एक चेहरा कुछ पहचाना लगा । अरे ! ये तो कनक ताई है चेहरे पर मोटा चश्मा, गोदी में बरस भर का बच्चा, साथ में सामान उतारती हुई एक सुन्दर सी लड़की ।

"मानसी इकडै बग, सगडै सामान आले का नाहीं" कनक ताई की भारी आवाज़ कितने दिनों बाद कानों में पड़ी थी ।

"हाँ आई । सगड़ै आले, कालजि करूनका । " लड़की मधुर आवाज़ में बोली ।

"बर आहे । पण ड्राइवर दिसत नाहीं । " सामान से निश्चिंत हो उनकी आँखे ड्राइवर को तलाश रही थी ।

मेरे पति अब तक सामान लेकर गाड़ी में पहुँच चुके थे । मेरे पास समय था, मैं कनक ताई के इतने पास आ गयी थी कि उनकी आवाज़ सुन सकूँ । मैंने धीरे से उनका हाथ दबाया- "कनक ताई । "

एक क्षण पूर्व विस्मित उनके नेत्र सामान्य हुए फिर आश्चर्य से फैल गई "अरे शालू तू । कैसी है? यहाँ कैसे? कहाँ जा रही है?" कई प्रश्नों की बौछार एक साथ हुई ।

कनक ताई को सारे उत्तर दिए अब प्रश्न पूछने की बारी मेरी थी । "आप कहाँ हो इन दिनों ताई । भाभी बता रही थी घर भी बेच दिया है । "

"हाँ शालू । उसे बेच दिया है वहाँ कौन रहता? दोनों भतीजे तो नागपुर ही है ना! भाभी ने भी वी.आर.एस. ले ली है । "

"मैं वहीं से आ रही हूँ । कार्तिक की भी नौकरी लग गई है । " कार्तिक उनके भतीजे का नाम था । गोद वाला बच्चा टुकुर-टुकुर देख रहा था, अब वह पास खड़ी लड़की के पास जाने की जिद करने लगा ।

"मानसी - ले बेटा ये तेरे पास आना चाहता है । "

बच्चे को पकड़ाकर कनक ताई चहकती हुई मेरे और पास आ गई बोली "शालू, ये मेरी बेटी है मानसी । "

मानसी ने गरदन झुका कर स्मित मुखड़े से नमस्ते किया । "मानसी ये मेरी बचपन की सहेली है, शालू । "

इधर पति ट्रेन के गेट पर खड़े हो पुकार रहे थे लगभग सभी यात्री चढ़ चुके थे । मैंने भी फोन नम्बर लिया, दिया । घर आने का वादा किया और ट्रेन पर चढ़ गई । यह सुनकर मैं खुश थी कि वो भी मेरे शहर में ही रहती हैं । अब तो मेल मिलाप बना रहेगां पिछले कई बरसों से हम नहीं मिले थे । बस मिली थी तो भाभी से कुछ हैरत में डालने वाली खबरें । अब ये विचार मन में गहराई तक खुशी दे रहा था कि स्वयं ताई के मुँह से ही सारी बातें सुनूँगी । मन का कौतूहल जो चुपचाप सोया पड़ा था, फन उठाकर खड़ा हो गया । मैं अगली मुलाकात की कल्पना कर रही थी ।

ट्रेन के साथ-साथ मन भी दौड़ने लगा । कनक ताई स्कूल में एन.सी.सी. की कैप्टन हुआ करती थी । ऊँची-पूरी, छरहरी । अपनी युगल चोटियों को गोल बाँधे हुए । सब पर हुकूम झाड़ने वाली, दहाड़ती शेरनी की तरह आदेश देने वाली बिंदास । अद्भुत थी वो । आकाश को भी लांघ जाने का अदम्य उत्साह, बाधाओं से जूझने का वो जज्बा, किसी को भी कुछ न समझने वाली मुद्रा । शायद इसीलिए वो हमारी कप्तान थी । जब कैम्प लगता तो कनक ताई का महत्व दुगुना हो जाता, शिक्षिकाएँ उसे सारी जिम्मेदारियाँ सौंप बेपरवाह रहती । उन दिनों मेरा महत्व भी कम नहीं रहता क्योंकि मैं कनक ताई के घर के सामने जो रहती थी । कैम्प में हमारी कई चीजें कॉमन होती । शैम्पू साबुन, परफ्यूम, कपड़े और खाने-पीने के सामान जो हम चोरी छिपे ले जाते थे । वे स्वयं तो दुःसाहस से कई नियम तोड़ती पर मज़े की बात यह कि किसी भी नियम को तोड़ने वाली लड़की की पेशी पहले कनक ताई के सम्मुख होती । वे ही निश्चित करती कि दोषी आगे जाएगा या नहीं वे मुझसे एक साल आगे थी, उनके स्कूल से निकलने के बाद साल भर तक मैं अकेली

ही साइकिल से स्कूल जाती। उनके साथ बिताए दिनों को भला मैं कैसे भूल सकती थी। जब साथ में स्कूल जाते थे कैसे एक झटके में वह साइकिल की चैन चढ़ा देती थी। मुझे अपनी बायीं ओर चलाती, मजाल है कि कोई दूसरी साइकिल हमसे आगे निकल जाए। कोई मनचला नज़दीक से निकले तो इतनी ज़ोर से चिल्लाती थी कि वो मनचला ही घबरा जाता फिर 'साले' चिल्लाकर उसे स्तब्ध कर देती फिर उसी मनचले के हाल पर ठहाका मारकर खूब हँसती।

मुझे याद है, कैसे जब एक बार मैं सज़ा के तौर पर कक्षा से बाहर खड़ी हूँ तो मुझे देखकर वे बेधड़क कक्षा में आई और शिक्षिका को मेरी झूठी बीमारी का लम्बा किस्सा सुनाया और मुझे सज़ा से बचाया था।

अब कनक ताई कॉलेज जाने लगी, उनके रंग-बिरंगे कपड़ों को देख मैं भी ललचाती। परिधानों का चयन और पहनने के सलीके में उनका सानी कोई न था। कभी-कभी मुझे भी अपने साथ दर्जी के पास ले जाती, अखबार की कतरनों जिनमें हिरोइनों के माडलों के चित्र से जब कपड़ों की डिजाइन समझाती तो दर्जी भी सिर पकड़ लेता।

उनकी रचनात्मक रूचि हर काम में झलकती थी, दिवाली पर अल्पना बनाने से पहले मोटे कागज पर इंच-इंच की दूरी पर अगरबत्ती से छेद बनाए जाते, उस मोटे कागज को ज़मीन पर बिछा कर सफेद रंग से छेदों को भरते, धीरे से उसे हटाते फिर उन बिंदुओं को जोड़-जोड़ कोई भी ज्यामिती संरचना बनाई जाती। रंगों के मेल पर एक दूसरे की सलाह ली जाती। हम पंद्रह दिन पहले से रंगोली बनाना शुरू करते जो आकार में धीरे-धीरे बड़ी होती जाती।

स्कूल का साथ कॉलेज में नहीं रहा, हम अलग-अलग आने जाने लगे फिर भी मैं तो कनक ताई की दिवानी थी, शाम होते ही दिन भर की खबरें सुनाने उनके घर आ धमकती। खबरों में आसपास के लोग होते, फिल्मों के अदाकार होते, किसी नए उपन्यास के पात्र होते, कॉलेज के प्रोफेसर और साथ में बैठने वाले सहपाठी होते।

कनक ताई दूसरे नम्बर पर थी, उनसे बड़े अभय दादा थे और उनसे छोटी थी सुधा।

उस गर्वोन्नत व्यक्तित्व को मतलब कनक ताई को मैंने पहली बार थका हारा, दबा-दबा सा देखा जब अभय दादा ट्रेन दुर्घटना में मारे गए थे। बड़ा भाव विहल करने वाला दिन था। गणेश चतुर्थी के एक दो दिन बाद की घटना थी, गणपति स्थापना में पूरे मुहल्ले की युवा टोली उन्हीं के मार्गदर्शन में काम करती थी, पहले दिन तो बप्पा को अपने हाथों से सजाया सँवारा था उन्होंने। वे बिजली विभाग में थे, पास के दूसरे जिले में नित्य ट्रेन से ही आवाजाही करते थे, सुना था किसी फौजी से लड़ाई हुई थी, धक्का मुक्की में चलती ट्रेन से गिर पड़े। अभय दादा एक बेटे के बाप थे और दूसरा दुनिया में आने वाला था। इस दुर्घटना से पूरा परिवार हिल गया। मुहल्ले में भी सन्नाटा पसर गया।

कनक ताई के आँसू सुख चुके थे, वे अपने स्वभाव के अनुसार पूरे परिवार के लिए सम्बल बनी। अपनी कठोर वाणी से रूदन करते हुए पिता को जब रोकती तो आसपास बैठे लोग सहम जाते। बाहर आकर दबे स्वर में ताई के बारे में रोष प्रकट करते। कनक ताई ने तो विधि की होनी को शीघ्रता से स्वीकार कर लिया और पूरे परिवार को भी इस दुख से उबारने लगी।

इस घटना के बाद मुझे उनके घर आने जाने में झिझक होने लगी, सारे चुप रहते थे। मैं अभय भैया के बेटे कार्तिक को खिलाने के बहाने जाती तो देखती कि कनक ताई तो पूरी गृहिणी बन गई है अपनी आई की तरह..... वैसे ही बोलना, रूकना, चलना, काम करना सब कुछ वैसा ही। अब न तो वे मुझसे कॉलेज की बातें करती, न कुछ बताती, न कुछ पूछती।

कुछ महीने बाद कार्तिक के भाई ने जन्म लिया, इस बच्चे के जन्म ने परिवार का ध्यान थोड़ा हटाया। दिन बीतते-बीतते बरस बीत गया। अब भाभी अभय दादा की जगह दफ्तर जाने लगी।

हम सब आगे बढ़ते गए, पर कनक ताई तो दो तीन बरस बाद भी वहीं थीं, अब वे दो बच्चों की पूरी माँ बन चुकी थी। उनके पास वे पुरानी बातें नहीं थी, जब भी मुझसे मिलती, दोनों भतीजों की ही बातें करती।

एक दिन माँ ने मुझे प्रसाद देने भेजा, कनक ताई दोनों बच्चों को लेकर बाजार गई हुई थी, उनकी आई झूले पर उनींदी सी लेटी हुई थीं, आई ने मुझे स्नेह से अपने पास बिठा लिया और बिना किसी भूमिका के कहने लगी-

"शालू तू भी समझा सके तो समझा दे कनक को। कितने रिश्ते आ रहे हैं। एक की हाँ नहीं भरती है। बस एक ही रट लगाए रहती है भाभी के साथ रहूँगी, शादी क्या जरूरी है?" दो घड़ी ठहर कर फिर बोलीं- "अब तू ही बता, ये भतीजे क्या कल माँ जैसा प्रेम और सम्मान दे पाएँगे। बड़े होने के बाद बोझा समझ कर उतार फेंका तो? तो क्या होगा इसका? आजकल तो बूढ़े माँ बाप भी बोझ है? फिर ये तो नौकरी भी नहीं करना चाहती। कहती है कार्तिक-

कुश का ध्यान कौन रखेगा? बता शालू चार पैसे के लोभ बिना इस कनक को कौन पूछेगा? हम कितने दिन रहेंगे?"

मैंने आई को दिलासा दिया, आई की बातों ने मुझे स्वयं की दृष्टि में एक परिपक्व, समझदार, शालीन सुकन्या बना दिया। उस दिन मैंने स्वयं को महत्वपूर्ण समझा। हालांकि घर वाले मुझे ऐसा कब का समझ चुके थे, इसीलिए कुछ ही महीनों बाद मैं भी पीहर छोड़कर जीवन के दूसरे पड़ाव में आ गई। मेरे भावी जीवन साथी के बारे में कनक ताई ने कोई रुचि, उत्सुकता नहीं दिखाई। बुरा लगा। मुझे भी थोड़ा ना थोड़ा अभिमान हो आया था। अब याद करती हूँ तो लगता है कि क्या मेरा अपनी अंतरंग सखी से ऐसा व्यवहार उचित था? वह तो बौरा गई थी पर मेरी गहन मैत्री न जाने किस गुफा में छिप गई। मैं चाहती तो उसकी सुप्त उमंगों को जाग्रत कर सकती थी, अपने सपनों के रंग उनको भी दिखाती तो शायद उदासी की चादर रंगीन होती। मुझे बार-बार आई की बात कहनी थी। मैंने तो आई वाली प्रार्थना सिर्फ एक बार कही थी जिसे उनने कुछ इस तरह नकारा "ना शालू ना! क्या रखा है शादी में? शादी करके भी तो माँ बनूँगी। तो आज ही बन गई। वईनीं भी तो भैया बिना रहती है। पुरूष का साथ ही जीवन है क्या? बिना पुरूष के कोई स्त्री जी नहीं सकती? आई अन्ना के लिए अब मैं ही अभय भैया हूँ। मैंने ध्यान से देखा था तरह-तरह की अगूठियों, कंगनों से सजे हाथ सूने थे एकदम वईनी की तरह, निराभरण।

हाँ, सचमुच उनने अभय दादा की तरह ही बनकर छोटी बहन की शादी करवाई, मेरे विवाह के बाद ही सुधा का विवाह था। कुछ दिनों बाद बाबा भी चल बसे। इधर मैं भी अपनी गृहस्थी में रम गई। पीहर औपचारिकता निभाने आती, कनक ताई से मिलना भी नहीं होता।

कुछ वर्षों बाद मेरी भाभी की एक फुसफुसाहट ने मानो कानों में शीशा उँडेल दिया "नही, नहीं! भाभी कनक ताई ऐसी नहीं है मैं उन्हें अच्छे से पहचानती हूँ। "

भाभी ने धीरे से कहा, "क्या पता दीदी? सारे आसपास के तो यही कहते हैं। "

मैंने अस्वीकार करते हुए कहा- "भाभी! यदि वो ऐसी होती तो शादी ही कर लेती, अच्छे-अच्छे लड़के खड़े थे कतार में और अब ? अब क्यों अपने से छोटी उम्र वाले इस लड़के के झमेले में पड़ेंगी वो? सब झूठ है लोगों का क्या है?" बेकार की बातें करते हैं लोग, अब इधर-उधर झाँकने की उम्र है उनकी? तुम भी भाभी इन कामवाली बाईयों की बातों में आ गई। " भाभी चुप हो गई। मुस्कुराती हुई काम में लग गई। एक बार तो लगा खुद कनक ताई से कहूँ कि ऐसी बातें कहाँ से उठी और क्यों? पर चाहकर भी ऐसा नहीं हुआ। इस बार भी मुझे वो घर पर नहीं मिली।

फिर कुछ महीनों बाद भाभी ने खबर दी "आपकी सहेली ने आखिरकार शादी कर ही ली दीदी। हाँ सही कह रही हूँ" भाभी की खिलखिलाहट में व्यंग्य घुला था "हाँ कनक ताई ने एक विधुर से कोर्ट मैरिज कर ली है। "

खबर मन को आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता दे गई पर दूसरे ही क्षण विचार आया कि अब चिरकुँवारी रहने की शपथ कहाँ गई? मैंने मन बना लिया था, बच्चों की परीक्षा समाप्त होते ही गरमी में लम्बे समय पीहर रहूँगी, कनक ताई को भी आने की कहूँगी हम पुराने दिनों को याद करेंगे परन्तु उन लोगों के घर बेचने के समाचार ने मेरे सभी अरमानों पर ताले मढ़ दिए।

जिसे ढूँढने के लिए मैंने कई बार इंटरनेट का सहारा लिया पर वो आज मुझे ऐसे मिलेगी, ये सोचकर मैं बार-बार पुलकित हो रही थी।

सात दिनों बाद जब मैं वापस घर लौट आई तो एक दोपहर को मुझे अपनी इस रहस्यमयी सखी की मायावी हँसी फोन पर सुनाई दी, घर आने का न्यौता मिला, मैं अगले ही दिन पहुँच गई। पति और बच्चे अब तक दो-तीन बार सुन चुके थे कि आज मुझे कनक ताई से मिलने जाना है। मैं बच्चों जैसे अधीर हो उठी।

शहर की सुनियोजित स्वच्छ, सुंदर बस्ती में प्यारा सा घर। मोगरे, गुलाब, चमेली से महकता हुआ। गमलों पर की गई चित्रकारी गृहिणी के कलात्मक रूझान का परिचय दे रही थी। दरवाजा खुलते ही आबोली की वेणी लटकाए सिर पर गोल बिंदी के नीचे चंद्राकार लगा ठेठ मराठी दिखने वाली कनक ताई निकली। लगा ये तो वही है मेरी स्कूल वाली सखी।

"आ गई शालू। आ....आ कोई मुश्किल तो नहीं हुई ना घर ढूँढने में। "

"ना ताई, आराम से मिल गया। "

"हो ना ये अच्छा ही हुआ"

"चल, यहाँ नहीं अंदर बेडरूम में बैठेंगे। ",

सुरुचिपूर्ण ढंग से सज्जित घर को निहारते हुए मैं उनके बेडरूम तक आ गयी। जहाँ छोटा-सा अबोध शिशु गहरी नींद में झूले में सो रहा था।

"ताई ये.....। कुछ संकुचित सी पूरी बात मुँह से निकली ही न थी पर ताई समझ गई।

"हाँ, हाँ मेरा ही है, तेरा भांजा है आई.वी.एफ. की मदद से हुआ है। सुदर्शन भी चाहते थे। यूँ तो मानसी थी पर वे दूसरा बच्चा भी चाहते थे।"

कुछ देर तक हम दोनों बच्चों की पढ़ाई, कैरियर, ये शहर, अपने-अपने ससुराल सब जगह घूम-फिर आए। हमने वर्तमान और भविष्य दोनों की तरफ झाँक लिया, अतीत अभी बाकी था। कनक ताई की ये दुनिया सुंदर थी, सजीली थी नाम के अनुरूप ही सुदर्शन पति मिला था। पुरानी कनक ताई फिर से जीवित हो उठी थी। मैंने मन ही मन निर्णय ले लिया था कि मैं ताई को कुरेद कर बीते दुखी दिनों की याद अब न दिलाऊँगी। देर से ही सही इस शुरूआत से वह खुश है। उनके हाथों के बने व्यंजनों ने पुराना स्वाद फिर चखाया, खा-पीकर हम दोनों फिर जम गई।

"शालू.... जानती है जीवन की कुछ लड़ाइयाँ ऐसी होती है जिन्हें हम स्वयं से ही लड़ते हैं। अब देखना शादी न करने का फैसला भी मेरा था और करने का भी। दोनों बार मैं अपने आप से लड़ी थी। .....खूब लड़ी थी।"

लम्बी साँस खींचकर फिर बोली- "मैंने पहले फैसले को सुधारने के लिए दूसरा फैसला नहीं लिया शालू। ये तो बदला था मेरा उससे।"

उससे, उससे सुनते ही मेरे चेहरे पर झलकी प्रश्नमुद्रा को देख वे धीरे से बोलीं-

"साकंले बाबू के मकान को खरीदने वाले शर्माजी का बेटा।" मुझे याद आया, हाँ, हाँ ताई के घर के पास बरसो से बंद पड़े मकान को तोड़ नया बंगला बना था। भाभी ने भी तो कुछ बताया था।

कनक ताई ने अगली कड़ी जोड़ते हुए कहा- "उनका परिवार तो बाहर ही रहता था, ठेकेदारों को देखने कभी-कभी उनका बेटा आता था। तब अन्ना चल बसे थे, आई और मेरा ही आमना-सामना होता था उससे। पडोसी होने के नाते कभी-कभी चाय-नाश्ता करवा देती थी। मकान से जुड़ी इधर-उधर की बातें होती थी। तू जानती है न शालू मैंने कितने सुंदर-सुंदर विवाह प्रस्तावों को अस्वीकृत किया था, भला मैं उसमें क्यों रूचि लेती? पर शालू बस एक घटना अवश्य जिम्मेदार थी इसकी। मैं चुपचाप सुन रही थी लग रहा था वे सब कुछ बताने के लिए तरस रही थी वे फिर बोली हुआ यूँ एक दिन आई सीढ़ियों से गिर पड़ी, मैं अकेली थी, आई की चीख सुनकर वो भी आया, उसके घर में रंगाई चल रही थी। आई को लेकर हम अस्पताल गए। वईनी को ऑफिस से बुलाया। आई के पाँव में फ्रैक्चर था। इसके बाद तो घर के एक सदस्य की तरह उसका आना-जाना लगा रहा। उसके आने से दोनों भतीजे खुश रहते। भाषा की कसीदाकारी से सजी उसकी बातें घर में सभी को अच्छी लगती। उसके उठने-बैठने की अंदाज़ धीरे-धीरे मुझे भी लुभाने लगा। उसकी आँखों में लहराते सम्मोहन के डोरे मुझे अंदर तक कंपकंपा देते। दिमाग से जितना उसे निकालने की कोशिश करती, उतनी ही फंसती जाती। आईने के सामने खड़ी हो, अपने चेहरे और हाव-भाव का निरीक्षण करती। स्वयं के विवाह न करने के प्रण को याद करती।"

"पर शालू मैं मूर्ति की तरह उन्नत, अटल तो बाहर से थी, अंदर से तो शिथिल, थकी, एकाकी ही थी। हाँ बिल्कुल एकाकी! फिर एक दिन मैं भी उत्सुकता जन्य दैहिक स्पर्श से दीप्त हो, उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर बैठी। अपने आचरण के रेशे-रेशे उधेड़ दिए। मजबूत चरित्र के होते हुए भी देह के राग, आलाप और सुर में खो गई। उसके आकर्षण में बिंध गई। उस स्वप्निल आवेग में अलग संसार रचा बैठी।"

"हँ पर शालू.... वो प्रेम नहीं था। तुझे याद है अरेबियन नाइट्स का वो सुलतान जो सुंदर औरत से शादी करता और अगले दिन सुबह बीबी का गला काट देता। उसी सुलतान की तरह था वो। सोयी हुई स्त्री का स्त्रीत्व जगा कर अपने जाल में फांसा, उपभोग किया और अन्ततः अपना निर्णय सुना दिया।"

एक दिन वईनी गुस्से से घर में घुसी। मुझे खींच कर कमरे में ले गई, दरवाजा लगाकर बोली "कनक अब ये दिन दिखाएगी तू। आज वो ऑफिस में आया था, कहता था तू शादी करने का ज़ोर दे रही है उसे। अरे! हम तो कर ही रहे थे ना तेरी शादी, क्यों मना किया तब? पता है तुझे क्या कहा उसने ? यही कि तू उसे ब्लैकमेल कर रही है, तेरे मैसेज दिखा रहा था मुझे। वो आई को भी सबकुछ बताने की कह रहा था। सच में ज़मीन फटती ना कनक तो उसमें समा जाऊँ ऐसी हालत हो गई थी मेरी उस समय। तू इतना आगे बढ़ गई। ये तूने अच्छा नहीं किया कनक ये तूने अच्छा नहीं किया।"

उसके आगे भी वे बोलती रही शालू, पर मेरे कानों में कुछ नहीं सुनाई दिया। मैं स्वयं को अपराधिनी मान खड़ी रही ठगी-ठगी सी। प्रेम-धोखा प्रवंचना। छली ने ठग लिया था।

बड़े मुश्किल के दिन थे वे। हिम्मत ज़ार-ज़ार हो गई थी। वईनी के सामने नज़रे नहीं उठती थीं, ये मैंने क्या किया? उसके प्रति घृणा भर आई, एक बार भी उसे नहीं देखा। थक कर मन को समझाती चलो अच्छा हुआ, जलजला आया आकर चला गया। उस दिन जब मैं कार्तिक के स्कूल से आई थी तो सामने आई, वईनी दोनों बैठी थी, मुस्कुराती हुई आई ने कहा- "कनक कल छोटी सुधा का फोन आया था, उसके वो जेठजी है ना सुदर्शनजी।"

मेरे भाव शून्य चेहरे को देख आई ने आगे कहा। "वो ही जिनकी पत्नी दो बरस पहले चल बसी थी, वे फिर से घर बसाना चाहते हैं। सुधा ने तुझसे पूछने को कहा है अब भी सोच ले बेटा, एक बेटी ही तो है पहले। अच्छा घर-वर। सब कुछ ठीक है कनक।" हाँ.... हूँ करके मैं कमरे में आ गई। पीछे-पीछे वईनी आई। बोली- "बहुत हुआ कनक। अब तुझे कुछ भी सोचने की जरूरत नहीं है। तुझे पता है वो उस दिन क्या कह

रहा था?" मैंने अपनी दृष्टि ऊपर उठाई।

"यही कि कनक को इस उम्र तक कोई नहीं मिला, अब मुझे जबरन पकड़ रही है, मैं तो उससे छोटा हूँ भला कैसे शादी करूँगा उससे।"

ये दूसरा प्रहार था मेरे आत्मसम्मान पर।

शालू, जीवन सबकुछ सिखा देता है पर मुझ जड़मति को सुजान बनने में बरसों लग गए।

दीर्घश्वास खींच कर वे चुप हो गईं।

मैं मुस्काराती हुई उन्हें वर्तमान में खींच लाई।

"देखो ताई मुन्नु जग गया है।"

घर लौटते समय यही सोच रही थी कि समाज के नियमों से बंधा जीवन ही जीवन है क्या? लीक से हटकर चलना कितना दुष्कर है।

लेखिका हंसा विश्नोई
पता 1171 डी विवेक बिहार योजना
जोधपुर राजस्थान 342005
मो. 93528 99870

सम्मतियां

राजी सेठ की कहानियों के संदर्भ में

एक-एक वाक्य बोलता हुआ... बाहर से भीतर और फिर भीतर से बाहर की ओर लौटने की प्रक्रिया प्रभावशाली, गहरी।... स्थिति चित्रण करती हुई कहानियां उससे ऊंची उठ जाती हैं। उनमें एक विशिष्ट कहानीपन आ जाता है।

–कमलेश्वर

राजी की कहानियों में लेखकीय अनुभव की जो संजीदगी, जो थिरायापन व्याप्त रहता है, वह आवेग में बुद्धि के अनुबंध से पैदा हुआ है। कहानी में कोई अनुभव, कोई विचार कच्चे माल की तरह, हड़बड़ी में, अनपके, अधपके रूप में नहीं आता। सब कुछ अतंतः पुख़्ता, पौढ़ा, तराशा हुआ…

–डॉ. निर्मला जैन

अच्छी कहानी किसे कहते हैं, इस बारे में राजी सेठ की कहानियां कुछ मौलिक सवाल उठाती हैं। अनुभव से अर्थ तक पहुंचने की यात्रा इन्हें विशिष्ट बनाती है।

–राजेन्द्र यादव

कमल की तरह आकंठ अनुभव में डूबी राजी की रचनाएँ संकेतों के आकाश में खुलती है या यह अनुभव कराती है कि अपने पैरों पर खड़ा व्यक्ति कितने आकाशों को देख सकता है।

–डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय

प्रतियोगिता हेतु कहानी

साइंसदानों[1] का क़ब्रिस्तान

डॉ. तौसीफ बरेलवी

ये उस नौजवान की ख़ुशक़िस्मती ही थी या उस का मुक़द्दर बदलने वाला था कि उस ने वह सब कुछ देखा जो उसके बाप दादा के नसीब में भी नहीं था। अपनी नाकामी से तंग आकर वह जिस पहाड़ी पर दो दिन तक रहा था अब वहाँ भी उसका दिल नहीं लग रहा था। पहाड़ी के जिस पेड़ पर वह बैठा था वहाँ से उसने देखा कि तीन तरफ बाग़ात से घिरे हुए क़ब्रिस्तान में एक सोने का ताबूत बड़े ही शौर्य व गर्व के साथ लाया गया जिसे पूरे सरकारी सम्मान के साथ ज़मीन के हवाले किया जाना था। नौजवान को समझते देर न लगी कि कोई साइंसदान चल बसा है। पूरे देश के साइंसदानों के लिए ये एक बहुत अनोखा क़ब्रिस्तान था जहाँ उन्हें हुकूमत की तरफ से सम्मान के साथ सोने के ताबूत में दफ़नाया जाता था। उस क़ब्रिस्तान का इतिहास उतनी ही सदियों पुराना था जितनी कि उस शहर की उम्र थी जहाँ पर क़ब्रिस्तान था। सैकड़ों वर्ष पहले ही ये क़ब्रिस्तान और उसके नियम बनाये गए थे और ये क़ब्रिस्तान सिर्फ साइंसदानों को समर्पित था लेकिन तब बात और थी...।

उस ने अपने देश और उस ऐतिहासिक क़ब्रिस्तान के बारे में एक किताब पढ़ी थी जिस में कई साइंसदानों की ईजादों और बादशाह की तरफ से उन को मिलने वाली सुविधाओं का बहुत ही तफ़सीली और हैरतअंगेज़ वर्णन किया गया था। सब से बड़ा सम्मान ये था कि किसी भी साइंसदान को मरने के बाद उस ऐतिहासिक क़ब्रिस्तान में सोने के ताबूत में रख कर दफ़नाया जाता। हर वर्ष उस क़ब्रिस्तान को सजाया जाता और उसके बाहर के मैदान में मेला सा लग जाता। मेले में देश भर...के लोग बाग आकर जमा हो जाते और क़ब्रिस्तान में दफ़्न अपने-अपने प्रियजनों के लिए प्रार्थना करते लेकिन उन्हें क़ब्रिस्तान के अंदर जाने की इजाज़त नहीं थी और दरवाज़े पर बादशाह के सिपाही हर समय तैनात रहते थे। हाँ जब कोई साइंसदान दुनिया से विदा होता तो उस समय सिर्फ उस के वारिस में से किसी एक को ताबूत के साथ क़ब्रिस्तान में जाने की इजाज़त होती थी। ये सब विचित्र था..... लेकिन था.....वर्षों से था।

उस नौजवान ने अपने स्कूल के दिनों में विज्ञान, अंक गणित और बीज गणित के साथ थोड़ा बहुत इतिहास भी पढ़ा था। हाँ साहित्य जैसी कोई भी चीज़ उन विद्यार्थियों को नहीं पढ़ाई जाती थी। उसका बहुत जल्द पढ़ाई से मोहभंग हो गया क्यूँकि उस का मन उन विषयों की तरफ लगता ही नहीं था जो उसे स्कूल में पढ़ाये जाते थे। एक दिन वह पहाड़ी पर गया और सिपाहियों की नज़र बचा कर शहर की प्राचीर पर चढ़ गया। उस ने पहली बार अपने शहर के बाहर का नज़ारा किया था। एक उचटती सी नज़र शहर से बाहर के कोहसारों, वादियों, जंगलों, पानियों और दूर के पहाड़ों पर धुंदली दिखाई देने वाली इमारतों पर पड़ी ही थी कि उसे सिपहियों ने पकड़ लिया। एक सिपाही उसका दूर का रिश्तेदार था इसलिए बच गया नहीं तो दंड का हक़दार तो वह था ही। रात को बिस्तर पर उसे नींद नहीं आ रही थी। उस की जागती हुई बेचैन आँखों में सिर्फ उन उन धुंदली इमारतों की तस्वीर थी जिन का दीदार उसे आज ही नसीब हुआ था।

ये शहर चूँकि राजधानी था इसलिये सब से ज़्यादा पाबन्दी यहीं पर थी। हालाँकि बादशाह की सल्तनत में जितने भी शहर गाँव और बस्तियाँ थीं उन सभी पर पाबंदियाँ थीं।

राजधानी किसी भी साम्राज्य का दिल होती है जो कि पसलियों के बीच में महफ़ूज़ होता है। सिपाहियों, मंत्रियों और अन्य सरकारी मुलाज़िमों को दूसरे शहरों तक आने जाने का इजाज़तनामा मिला हुआ था। किसान अपनी फसलें तैयार करते और बैल गाड़ियों में लाद देते उसके बाद सिपाही उन्हें दूसरे शहरों या देशों तक ले जाते। इसी तरह दूसरे शहरों या देशों से अनाज या अन्य सामान लाया जाता था। नदियों पर कश्तियाँ तैयार रहती थीं।

1. साइंसदान = वैज्ञानिक

राजधानी का रक़बा इतना बड़ा था कि छोटा मोटा देश उसमें आबाद हो जाये। शहर की विशाल प्राचीर को पहाड़ों जंगलों और कहीं कहीं पर नदी के ऊपर से भी गुज़ारा गया था। चारों तरफ हरियाली थी, मवेशी थे, परिंदे थे और सुकून जैसी ख़ामोशी थी। बादशाह ने जो प्रयोगशाला का निर्माण कराया था उसमें शाही साइंसदान हर समय उपकरणों, दवाओं और रसायनों की खोज में सरगर्म रहते थे। रक्षक अपने कर्त्तव्य जाँफ़िशानी से अंजाम दे रहे थे। पड़ोसी देशों से भी अच्छे सम्बंध थे और एक दुसरे के देशों में दूतावास भी बना रखे थे। सरकारी स्कूल नौनिहालों को विज्ञान और गणित पढ़ा रहे थे। सब कुछ तो ठीक था...क्या सच मुच सब ठीक था ? ये कशमकश अभी उस देश के किसी भी नागरिक के मस्तिष्क में पैदा नहीं हुई थी।

तालाबों में कमल वैसे ही खिल रहे थे, बत्तख़ें तैर रही थीं और मछलियाँ उन की तो अदा ही निराली थी। रंग बिरंगी तितलियाँ सुगन्धित हवाओं में रंगीन सपने बुन रही थीं जिन्हें देख कर बच्चे अपनी माँओं की गोद में लहराने लगते। परिंदे अपना गीत सुनाते और ख़ास तौर पर कोयल लेकिन इन गीतों को सुन कर किसी का दिल नहीं मचल उठता। मोर जगह-जगह नाचते-फिरते लेकिन कोई उनका नाच देख कर गद्गद नहीं होता। शहर में कोई नाकारा नहीं था सिवाए उस नौजवान के। वह बाँका था नौख़ेज़ था कम उम्र था और बेख़ौफ़ भी। उसका बाप सिपाही था जिसके गुज़रने के बाद उसकी विधवा माँ को बादशाह की तरफ से मिलने वाली पेंशन का सहारा था। उस मामूली सी रक़म से माँ बेटे की ज़रूरत किसी तरह पूरी हो ही जाती थी क्यूंकि नौजवान की माँ को कभी कभार महल में जाकर मलिका की ख़िदमत का मौक़ा भी मिल जाता जिस से कुछ न कुछ मिल ही जाता था।

नौजवान के अंदर न तो पढ़ने लिखने का शौक़ था और न ही तलवारबाज़ी को सीखने का माद्दा। उसे ख़ुद भी नहीं पता था कि उसकी लापरवाही आख़िर उसे कहाँ ले जाएगी।

धुंदली इमारतों को देखे हुए कई दिन गुज़र चुके थे और अब वह इमारतें उसकी नज़र में धुंदली नहीं रही थीं बल्कि उन का रंग व रौग़न और यहाँ तक कि उन की नक़्क़ाशी भी उस के दिमाग़ में छप चुकी थी। उसकी ख़्वाहिश आँखों से होते हुए दिल में पहुँची तो इरादे में तब्दील हो गई। वह कोई सरकारी आदमी तो था नहीं जो आवा-गमन का परवाना उसे मिल जाता। अपनी माँ को बग़ैर बताये वह चुप चाप अनाज से लदी एक गाड़ी में छिप कर शहर से बाहर चला गया। दूसरे शहर की सीमा में प्रवेश करने के बाद मौक़ा मिलते ही वह बैलगाड़ी से उतर कर जंगल में ग़ायब हो गया।

एक रात जंगल में गुज़ारने के बाद जब वह बाज़ार में पहुँचा तो बाज़ार में किसी का जनाज़ा निकल रहा था इसलिए बहुत भीड़ थी। नौजवान ने ताबूत को ग़ौर से देखा लेकिन ये सोने का नहीं था। उस ने जनाज़े से नज़रें हटा कर बाज़ार की रौनक़, आकर्षण और क़ीमती सामान की सजावट को देखा। भूख ने जब सताया तो उसने अपनी गोट से एक सिक्का निकाला और दुकान में चला गया जहाँ खाने का कुछ सामान रखा हुआ था। अभी वह दुकानदार से कुछ कहता उसे परदे के पीछे से एक सुरीली आवाज़ सुनाई दी।

"बाबा मैं इबादतगाह जा रही हूँ वहाँ से ख़ानक़ाह भी जाऊँगी।"

आवाज़ इतनी बारीक थी कि कानों के साथ-साथ शरयानों में भी उतरती चली गई और वह नौजवान अपनी नस-नस में मिठास को घुलता हुआ महसूस कर रहा था। दुकान की सारी चीज़ें उसे मंहगी लग रही थीं या यूँ कहें कि उसके पास सिक्के कम थे इसलिए वह बग़ैर कुछ ख़रीदे ही दुकान से बाहर निकल गया। गली में किसी से इबादतगाह की दिशा पता करके वह उस तरफ चल दिया। वहाँ पहुँच कर वह बाहर ही रुक कर कुछ सोचने लगा और कुछ देर बाद जंगल में ग़ायब हो गया। अगले दिन भी नौजवान इबादतगाह तक आया लेकिन अंदर नहीं गया। तीसरे दिन जब वह जंगल का रुख़ करने ही वाला था कि उसे पीछे से किसी ने पुकारा।

"क्या आपको किसी की तलाश है?"

जानी पहचानी सी आवाज़ सुन कर नौजवान पलटा। सामने एक लड़की थी जो उम्र में उस से ज़रा निकलती हुई थी लेकिन

ख़ूबसूरती में बेमिसाल थी।

"जी....वो....मैं...."

"मैं ख़ानक़ाह जा रही हूँ, मेरे पीछे ज़रा फासले से आइये। ख़ानक़ाह पास ही है और इतनी देर में मेरे सवाल का कोई सटीक जवाब भी सोच लीजियेगा। वरना....!"

ख़ानक़ाह के ख़ूबसूरत बाग़ीचे की हरी और मुलायम घास पर नौजवान को बैठने का इशारा करते हुए लड़की ने अपना सवाल दोहराया। जवाब में नौजवान ने भी सब कुछ कह सुनाया। उसके

पास सुनाने को था भी क्या, सिवाए चोरी से भाग आने वाले वाक़िये के।

"यहाँ किस लिए आये हो?" लड़की ने फिक्रमंदी से पूछा।

"मालूम नहीं, शायद ज़िंदगी का कोई मक़सद मुझे यहाँ खींच लाया हो?" कह कर नौजवान उस लड़की की आँखों में देखने लगा। बदले में वह भी मुस्कुरा दी और उसके बाद किसी सवाल की गुँजाइश नहीं रही थी। अब नौजवान के लिए खाने का सामान भी आ जाता था। वही मंहगा सामान जो नौजवान की हैसियत से बाहर था। उस से पहले उसके पेट की आग को जंगल ने बुझाया था, कभी फल और मेवे से तो कभी परिंदों के नर्म गोश्त से। लड़की से मेल मुलाक़ात बढ़ती ही गई तो एक दिन नौजवान ने कहा:

"क्या तुम मेरे साथ उम्र भर रहोगी? मुझे तुम्हारे साथ अपना घर बसाना है।"

"हाँ मेरे अज़ीज़ लेकिन ये सब कैसे मुमकिन होगा?" लड़की की काली आँखों में हैरत थी।

"पुराने क़ायदों, ज़ाब्तों, हदबंदियों और बंदिशों को तोड़ कर....।" नौजवान ने दूर देखते हुए बेफ़िक्री से कहा। "मतलब बग़ावत....!" लड़की सहम कर नौजवान से लिपट गई।

दोनों ही बख़ूबी जानते थे कि बग़ावत का रास्ता मौत की वादी से होकर गुज़रता है और मौत भी कैसी....? गुमनाम मौत....! साइंसदानों वाली सम्मानित मौत तो हरगिज़ नहीं। साइंसदानों वाली मौत तो उस देश के हर इंसान की हसरत होती थी जो वह अपने साथ ही लेकर पैदा होते थे। इतिहास में दर्ज था कि सइंसदानों की तरह सम्मानित मौत तो उस देश के सारे बादशाहों को भी मयस्सर नहीं आई थी।

"मेरी ज़रूरतें कैसे पूरी करेंगे आप?" लड़की ने अचानक पूछा।

"हाँ ये तो मैंने सोचा ही नहीं लेकिन घबराने की बात नहीं कुछ न कुछ कर ही लूँगा। शाही सिपाही न सही शाही मुलाज़िम.... नहीं नहीं हम काश्तकारी करेंगे।" नौजवान ने आत्मविश्वास से कहा।

लड़की ने अपने कम उम्र आशिक़ की नादानी और हिम्मत पर मुस्कुराते हुए उस के बालों में अपनी लम्बी और गोरी उँगलियाँ डालीं। आशिक़ भी मुस्कुराने लगा। मुस्कराहट दिलों की रहत हुआ करती है और जब मुस्कराहट का तबादला सच्चे दिल से हो तो रहत के अलावा भी अपने साथ बहुत कुछ लेकर आती है। एक महा शक्ति जिसका नाम इश्क़ है इन्ही मुस्कानों, मुस्कुराहटों और ठहाकों का ऋणी है।

"क्या आप को अपनी माँ की फ़िक्र नहीं?" लड़की ने नौजवान को एहसास दिलाया।

"आज रात ही वापस अपने शहर जा रहा हूँ। वैसे भी मैं कई कई रोज़ अपनी आदतों से मजबूर होकर जंगल में गुज़ारता हूँ इसलिए माँ के लिए ये आम बात हो गई है। मेरी वजह से माँ परेशान तो बहुत है लेकिन मेरी भी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ....? लेकिन अब आप से मिलने के बाद कुछ-कुछ समझ में आ रहा है की मुझे क्या करना है।"

नौजवान के पास अपनी माशूक़ा से बदलने के लिए कोई निशानी भी नहीं थी और उस ने लड़की की अंगूठी को ये कहते हुए वापस कर दिया:

"नहीं हमारी मोहब्बत किसी निशानी की मोहताज नहीं। मोहब्बत के जो निशान हमारे दिलों में हैं वही अस्ल हैं। मैं अपनी इस कभी ख़त्म न होने वाली मोहब्बत के बारे में दुनिया को बताऊँगा ताकि ज़मानों तक हमारी मोहब्बत के गीत दुनिया में गूंजते रहें।"

नौजवान की जोशीली बातें सुन कर लड़की ख़ौफ़ज़दा हो गई। दोनों ही जानते थे कि देश में इश्क़ व मोहब्बत को नाकारा लोगों का शौक़ समझा जाता था। इश्क़ तो वहाँ सिर्फ विज्ञान और गणित से करना सिखाया जाता था। ऐसे में उस नौजवान और लड़की के इश्क़ का पनपना ठीक वैसे ही था जैसे किसी बंजर ज़मीन पर कोई पौधा अपने आप उग आये।

नौजवान अब डूबते हुए सुर्ख़ सूरज को देख रहा था लेकिन लड़की के गुलाबी होंठ देख कर वह तो यहीं बस जाना चाहता था।

"हमारी मुलाक़ात फिर कब होगी?" लड़की ने उम्मीदवार नज़रों से देखते हुए पूछा।

"साइंसदानों के क़ब्रिस्तान के बाहर जब मेला लगे तो उसमें शिरकत के लिए आइयेगा, वहीं मुलाक़ात होगी।" नौजवान ने लड़की की आँखों में देखा।

"हाँ ज़रूर...बाबा जान के साथ बचपन में एक बार गई थी। वहाँ मेरे पर दादा दफ़्न हैं। वह हकीम थे और उन्होंने एक ऐसा नुस्ख़ा ईजाद किया था कि जिसे खा कर इंसान अपनी फ़िक्र से आज़ाद हो जाता। नुस्ख़ा ज़ब्त करके इसलिए जाया कर दिया गया क्यूंकि हुकूमत को लगता था कि अगर फ़िक्र से निजात मिल गई तो इंसान आलसी और आराम पसंद हो जायेगा और ये सल्तनत की तरक़्क़ी के लिए ठीक नहीं। पर दादा को कोई वज़ीफ़ा तो नहीं दिया गया अलबत्ता जब उन का इंतेक़ाल हुआ तो साइंसदानों के क़ब्रिस्तान में जगह दी गई जिस का ऐलान बादशाह ने नुस्ख़ा ज़ाया करवाते समय ही कर दिया था।

"उस मेले में तो बड़ी भीड़ होती है...। " लड़की ने कहा।

"फ़िक्र न कीजिये हम एक दुसरे को ढूँढ ही लेंगे। " नौजवान मुस्कुराया।

नौजवान जब लड़की से अलग होकर जाने लगा तो लड़की ने कहा:

"अब आप क्या करने वाले हो ?"

"हमारी मोहब्बत की कहानी लिखूंगा। " उसने मज़ाक़िया अंदाज़ में कहा।

"मोहब्बत की कहानी...? ये भी कोई लिखने की चीज़ है? हमारा समाज तो इसे...। "

"हाँ अब समय आ गया है कि हमारे समाज और देश का ज़ायक़ा बदला जाये। पहले मैंने काश्त करने का फैसला किया था लेकिन अब मोहब्बत की कहानी लिखूंगा...हमारी मोहब्बत की कहानी। रोज़ी रोटी के लिए ख़ुदा बंद की बनाई हुई ये ज़मीन और उस पर उगे हुए जंगल ही काफ़ी हैं जिन पर हर जानदार का हक़ है। "

मोहब्बत की कहानी उस देश में किसी ने नहीं लिखी थी इसलिए उस का लिखा जाना आसान नहीं था क्यूंकि नमूने के तौर पर मोहब्बत की कोई भी कहानी देश के किसी विश्वविद्यालय या पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं थी। मोहब्बत क्या है? सब जानते थे लेकिन किसी ने मोहब्बत की कहानी को पढ़ा नहीं था। फिर भी उस ने मोहब्बत की कहानी लिखने का मज़बूत इरादा किया। आख़िर वह नौजवान था और अपने शहर में सब से अनोखा भी। उसे विज्ञान से इंकार नहीं था लेकिन वह उस मज़मून को पढ़ने में दिलचस्पी नहीं रखता था। उसे सुबह की नर्म धूप, तालाब में खिले हुए कमल, बाग़ों में खिले गुलाब, हवा में उड़ते परिंदे और चारों तरफ फैली हरियाली के माने कुछ अलग ही नज़र आते थे। यही सब उसकी मोहब्बत की कहानी को बढ़ावा देते थे।

नौजवान ने अपने शहर जाकर पहला तजुर्बा किया। उस ने अपनी मोहब्बत की कहानी लिखी और ख़ुफ़िया तौर पर अपने नौजवान दोस्तों को सुनाई। ये पहली बार था कि वह लोग मोहब्बत की कहानी सुन रहे थे। इस से पहले उन्होंने हमेशा विज्ञान की ईजादों पर आधारित कहानियाँ सुनी थीं। सब को हैरत हुई कि कहानी का ऐसा दिलचप रूप भी हो सकता है। शहर के एक बुज़ुर्ग से नौजवान को मालूम हुआ था कि सदी भर पहले तक इस देश में देश भक्ति और कुछ रस्म व रिवाज के गीत लिखे जाते रहे थे, हाँ इश्क़ व आशिक़ी की दास्तान उन में भी नहीं थी। फिर न जाने क्या हुआ, नए बादशाह के गद्दी पर बैठते ही लोक गीत की रिवायत पर पाबन्दी लगा दी गई हालाँकि गीतों के अलावा साहित्य लिखे जाने पर पहले ही पाबन्दी थी। किसी भी रस्म व रिवाज में गीत नहीं गए जा सकते थे क्यूंकि गीत देश की तरक़्क़ी में सहायक नहीं थे। कई कमज़ोर सी वजहें बता कर गीतों की पांडुलिपियों और नक़्लों को जलाया जाने लगा। गीत लिखने और गाने वालों पर अदालतों में मुक़दमे चले और उन्हें उम्र क़ैद की सज़ाएँ हुईं। फिर उसके बाद विज्ञान को तरक़्क़ी दी गई। रसायन, हथियार, कपड़े, काश्तकारी के उपकरण इमारतें बनाने में इस्तेमाल होने वाले सामान और उपकरणों की ईजादों के काम ज़ोरों पर होने लगे।

कुछ ही दिनों में नौजवान की इश्क़िया कहानी की नक़्लें शहर के तमाम नौजवानों तक पहुँच गईं। ये बात सिर्फ शहर तक ही सीमित नहीं रही बल्कि दूसरे शहरों में भी मोहब्बत की कहानी की नक़्लें जा पहुँचीं। हुआ यूँ कि कुछ मनचलों ने शहर से बाहर जाने वाले सामान में चोरी छिपे कुछ नक़्लें रख दीं। इश्तेहार वाले कपड़े पर जब पाबन्दी लगा दी गई तो पत्तों पर लिखा जाने लगा। ये उस देश की पहली इश्क़िया कहानी थी जो अवाम तक तहरीरी शक्ल में पहुँची थी और नौजवान तो उसकी तरफ मोहित हुए जा रहे थे। बादशाह ने एक ख़ुफ़िया प्रतिनिधि मंडल उस मामले की तफ़्तीश के लिए गठित कर दिया था जो हर समय उस कहानी के लेखक को ढूँढने में सरगर्म था। शहर के नौजवान अब न सिर्फ उस इश्क़िया कहानी के सम्मोहन में थे बल्कि वह भी अब इश्क़ करना चाहते थे। इश्क़िया जज़्बात के पैदा होते ही उन्होंने भी अपने जिस्मों में बदलाव महसूस किया।

आख़िरकार इश्क़ व मोहब्बत की कहानी लिखने वाला पकड़ा गया और उसकी सज़ा मौत से ज़्यादा और क्या ही हो सकती थी। हाँ उस मौत को और भी भयानक बनाने और ज़्यादा लोगों तक इस ख़बर को फैलाने के लिए सालाना मेले में ही नौजवान को फाँसी दिए जाने का हुक्म सादिर हुआ। नौजवान के चाहने वालों में ये ख़बर जंगल की आग की तरह फैल गई लेकिन उन ख़ैरख़्वाहों में जाँनिसारों की तादाद अभी भी इतनी नहीं हुई थी की वह बादशाह की फ़ौज का मुक़ाबला करके अपने इश्क़ के हीरो और मोहब्बत की कहानी के जन्मदाता को आज़ाद करा लेते।

सालाना मेले का आयोजन बहुत ही शान व शौकत से हुआ। उस मेले में नौजवानों की तादाद पिछले कई बरसों से ज़्यादा थी बल्कि नौजवानों को ख़ास तौर पर आमंत्रित किया गया था। देश के दूसरे शहरों से बहुत से लोग आकर साइंसदानों के क़ब्रिस्तान के बाहर मैदान में जमा हो गए थे और वह क़ब्रिस्तान में दफ़्न अपने बुज़ुर्गों के लिए कम, इश्क़ के उस नौजवान प्रचारक के लिए ज़्यादा दुआएँ मांग रहे थे। अभी उसकी उम्र ही कितनी थी। सिर्फ मोहब्बत की कहानी लिखने पर सज़ा-इ-मौत...! ज़्यादातर लोगों को एहसास हो रहा था कि ये क्या होने वाला है और क्यों होने वाला है? लेकिन सब की आवाज़ें हलक़ में ही दब कर रह गई थीं। मैदान के बीच में फाँसी के तख़्ते पर नौजवान मुस्कुरा रहा था। मरने से पहले आख़िरी ख़्वाहिश पूछे जाने का रिवाज था सो उस से भी पूछा गया। अभी वह कुछ बताता कि उस से पहले ही मैदान में नौजवान की माँ दहाड़ें मार कर बेहोश हो गई।

"मेरे अज़ीज़.....! " एक दुखी आवाज़ बुलंद हुई। लोग उस आवाज़ की तरफ देखने लगे।

"आप आ गईं मोहतरमा.....! सही वक़्त पर आई हैं आप। मैं सब के सामने आपको अपनी शरीके हयात क़ुबूल करता हूँ। "

"हाँ हम सब इस मुक़द्दस अमल के गवाह हैं। " अवाम की आवाज़ गूंजी।

"माँ का ख़याल रखियेगा। " कहकर नौजवान ख़ामोश हो गया।

बाग़ी हो चुके नौजवानों और अवाम को शांत करने के लिए बादशाह ने फ़ौरन ऐलान किया:

"बेशक ये नौजवान सल्तनत का बाग़ी था। मगर इसकी लिखी हुई मोहब्बत की कहानी में ऐसा खिंचाव है कि बहुत से नौजवानों को अपनी तरफ झुकाने में कामयाब हो गया है। सुना है इसकी कहानी में असर है जो इंसानी जिस्मों में तब्दीलियां पैदा करता है। मैं यानी वली अहदे सल्तनत और मेरे सलाहकारों का ये मानना है कि ये भी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। ऐसी लिखावट का ईजाद किया जाना जो दिलों पर क़ब्ज़ा करे यक़ीनन ईजाद है लिहाज़ा दस्तूर के मुताबिक़ इस कम उम्र आशिक़ को फाँसी के बाद साइंसदानो के क़ब्रिस्तान में दफ़्न किये जाने का हुक्म दिया जाता है।

अफ़सोस...सद अफ़सोस कि ये ईजाद देश की अखंडता के लिए ख़तरा है और देश की कामयाबी और तरक़्क़ी के लिए ये फ़ैसला लिया जा रहा है। "

बादशाह जा चुका था और बहुत से नौजवान फाँसी के तख़्ते की तरफ उमड़ पड़े लेकिन बादशाह के सिपाही मुस्तैद थे और किसी को उस तरफ बढ़ने नहीं दे रहे थे।

जो चिंगारी नौजवान ने छोड़ी थी वह अब अंगारे का रूप धार चुकी थी। बादशाह को इल्म था कि ये नौजवान ख़ामोश नहीं रहेंगे इसलिए जिस भी नौजवान के पास से इश्क़िया कहानी बरामद होती उसे क़ैदख़ानों के गहरे अंधेरों में पहुँचा दिया जाता। उन्हीं दिनों बादशाह के एक सलाहकार ने उसे ये ख़बर दी कि अब शहर में कुछ नई इश्क़ की कहनियाँ गर्दिश कर रही हैं।

एक सुबह बादशाह को नाश्ते की तश्तरी में इश्तेहार वाले कपड़े का एक टुकड़ा रखा मिलता है। पहले तो उसे लगा कि कोई ख़त होगा लेकिन उसे खोलने पर मालूम हुआ कि उस में इश्क़ की कहानी लिखी हुई है.....।

अस्ल उम्र से कहीं ज़्यादा बूढ़ी दिखने वाली औरत ने कुल्हाड़ी को बुलंद किया ही था कि उस के हाथों को नाज़ुक सी दिखने वाली लड़की ने थाम लिया और कहा:

"अम्माँ आप रहने दीजिये। ये सारे काम मेरे ज़िम्मे हैं। " बूढ़ी औरत लड़की की तरफ देखने लगी। दूर से आने वाली लाल रौशनी पहाड़ों पर फैलने लगी और सूरज अब निकलने ही वाला था।

डॉ. तौसीफ बरेलवी
असिस्टेंट प्रोफेसर
उर्दू विभाग
अल-बरकात कॉलेज ऑफ़ ग्रेजुएट स्टडीज़
अलीगढ-202122 (उप्र)
मोबाइल: 9058296593
tauseefbareilvi1@gmail.com

प्रतियोगिता हेतु कहानी

आशा

आचार्य नीरज शास्त्री

आशा शोभाराम और कमला की बेटी है । वह अपने भाई- बहनों में सबसे बड़ी है । वह चौदह साल की हो चुकी थी । शोभाराम के बच्चों में आशा से छोटी सुधा है जो ग्यारह वर्ष की थी और सबसे छोटा है करन । करन आठ वर्ष का था । शोभाराम और कमला मेहनत-मजदूरी करके अपने परिवार का पालन- पोषण कर रहे थे । वे ग्वालियर शहर में किराये का मकान लेकर इसलिए रहते थे कि बच्चों की पढ़ाई अच्छी तरह हो सके और वे उच्च पदों पर नियुक्त हो सकें। यद्यपि गरीब आदमी के लिए इस सपने को साकार करना कठिन है फिर भी शोभाराम इस सपने को साकार करने के लिए पूरी तरह लालायित था । बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए ही उसने अतुलित श्रम किया । उसके परिवार में सब कुछ ठीक चल रहा था लेकिन माँ के कैंसर और छोटी बहन सरिता की शादी के क़र्ज़ ने शोभाराम का जीवन मुश्किल कर दिया । तब वह पिछले कुछ महीनों से सभी लेनदारों को आश्वासन दे रहा था कि जल्दी ही सबका एक- एक पैसा चुकता कर देगा लेकिन बच्चों की पढ़ाई का खर्च भी अधिक था।

शोभाराम ने अपने तीनों बच्चों को शहर के सबसे अच्छे स्कूलों में से एक ग्वालियर कॉन्वेंट स्कूल में दाखिल किया था । इसलिए उसकी कमाई के पंद्रह हजार रुपए में से नौ हजार तो बच्चों की फीस में ही चले जाते थे।

शोभाराम ने जिनसे क़र्ज़ लिया था उनमें माखन लठैत भी था । माखन लठैत से उसने पूरे एक लाख रुपए उधार लिए थे । एक दिन माखन शोभाराम के घर आया । उसने शोभाराम से रुपए मांगे तो शोभाराम ने कहाँ -" भैया! मैं जल्दी ही आपका पैसा चुका दूंगा। मुझे कुछ दिन की मोहलत और दो। "

माखन बोला-" सुन शोभाराम मुझे आज रात बारह बजे से पहले पैसा चाहिए.... तू कहाँ से लाएगा.. क्या करेगा.. तू जाने । यदि मुझे आज रुपए नहीं मिले तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। " - वह धमकी देकर चला गया।

शोभाराम मन ही मन सोच रहा था कि किसी भी तरह वह माखन को मना ही लेगा और गाँव के मकान को बेचकर उसका क़र्ज़ चुका देगा ...वैसे भी उसे अपने परिवार को गाँव के नर्क में नहीं धकेलना है... जब बच्चे बड़े हो जाएंगे, उसका परिवार शान से जिएगा। बस... कुछ ही वर्षों की बात तो है। शोभाराम काफी देर तक बैठक में अकेला बैठकर यही सब सोचता रहा।

आशा ने उस दिन कई बार उससे उसकी चिंता का कारण पूछा मगर उसने उसे कुछ नहीं बताया।

रात घिरने लगी। परिवार के सभी सदस्य खाना खाकर सो गए लेकिन शोभाराम की आँखों से नींद गायब थी क्योंकि घड़ी में ग्यारह बज चुके थे और माखन लठैत आने वाला था।

उस स्याह सर्द रात में चारों ओर सन्नाटा पसरा हुआ था । केवल झींगुरों की झनझनाहट सुनाई दे रही थी, कभी- कभी पटरी से गुजरती ट्रेन की आवाज़ सुनाई देती थी। उसने एक बार फिर घड़ी देखी तो समय ग्यारह बजकर दस मिनट हो रहा था । ठीक तभी माखन लठैत अपने दो लोगों के साथ आया । उसने शोभाराम से रुपए मांगे। शोभाराम ने हाथ जोड़कर कहा-" भैया! बस पन्द्रह दिन का समय और दे दो, मैं गाँव का मकान बेचकर आपका एक - एक रुपया चुकता कर दूँगा। " ... लेकिन माखन के सिर पर तो खून सवार था उसने शराब के नशे में चाकू निकाल कर शोभाराम की हत्या कर दी। शोभाराम की चीख सुनकर कमला दौड़ती हुई बाहर आई तो उसने उसे भी मौत के घाट उतार दिया।

सवेरे जैसे ही चार बजे, घड़ी में अलार्म बजा । अलार्म की आवाज़ सुनकर आशा की नींद खुली । वह अपने बिस्तर से उठी । मुँह धोकर चाय बनाई और हमेशा की तरह पापा को देने बाहर आई परंतु शोभाराम और कमला को मृत देखकर चाय उसके हाथ से छूट गई। चारों तरफ बिखरे हुए ख़ून को देखकर वह चीख पड़ी और फूट- फूटकर रोने लगी। उसके रोने की आवाज़ सुनकर सुधा और करन भी बाहर आ गए। पास - पड़ोस के लोग भी एकत्र होकर इस घटना पर चर्चा कर रहे थे लेकिन उन मासूम बच्चों को समझाने वाला पूरे शंभूनगर में कोई नहीं था।

तभी पुलिस आई और शोभाराम व कमला का पोस्टमार्टम हुआ । ऐसे समय में यदि शांति काकी का सहारा न मिलता तो बेचारे अबोध मासूम बच्चे शायद रो -रोकर ही मर जाते।

माता- पिता के अंतिम संस्कार के बाद दोनों छोटे भाई -बहन की जिम्मेदारी आशा पर आ गई। यह भी कह सकते हैं कि केवल आशा

ही दोनों भाई- बहन की आशा के रूप में शेष थी क्योंकि रिश्तेदार और जान पहचान वालों ने भी बारह दिन बाद लौटकर भी नहीं देखा।

यही संसार में होता आया है। सभी सुख के साथी होते हैं,बुरे समय में सभी पल्ला झाड़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में आशा ने संकल्प लिया कि वह माता- पिता की मौत का प्रभाव छोटे भाई- बहन पर नहीं पड़ने देगी।

धीरे-धीरे पूरा सप्ताह गुज़र गया। कनस्तर में रखा आटा भी समाप्त होने की ओर था। अड़ोस-पड़ोस में कोई भी ऐसा नहीं था, जो उनकी मदद करे। दो असहाय लड़कियाँन होतीं तो शायद लोग करन से हमदर्दी जताते परंतु जब एक लड़की की शादी ही लोगों की नाक में दम कर देती है, ऐसे समय में कोई भी उन तीन अनाथ बच्चों की मदद भला क्यों करता? कहते हैं, ईश्वर बड़ा दयालु है। वह ज़िंदगी देता है तो जीने का हौसला भी देता है।

ईश्वर ने ही आशा को हौंसला दिया। उसने अपनी क्लास टीचर मिसेज मोनिका चड्ढा के पति मि. मनजीत चड्ढा के गारमेंट शोरूम में काम करना शुरू कर दिया। वह सुबह दस बजे से शाम पांच बजे तक वहाँ काम करती और उसके बाद अपने घर आकर काम करती। चौदह साल की लड़की भला इससे अधिक और कर भी क्या सकती थी। वह अपनी पढ़ाई छोड़कर दोनों भाई-बहिन के जीवन को संवारने में जुट गई। प्रतिदिन सुबह जागकर घर की साफ-सफाई के साथ ही वह भाई- बहन के टिफिन लगाकर उन्हें स्कूल भेजती और फिर घर का काम निपटाकर शोरूम चली जाती । लौटकर छोटे भाई- बहन को पढ़ाती, उनका गृहकार्य कराती और फिर शाम की व्यवस्थाओं में जुट जाती।

समय तीव्र गति से गुज़र रहा था। आशा का परिश्रम भी रंग ला रहा था। देखते ही देखते कब पन्द्रह वर्ष गुज़र गए पता ही नहीं चला। वह स्वयं उनतीस वर्ष की हो गई। यद्यपि यह उसके विवाह की उम्र थी परंतु उसने अपनी सभी कामनाओं को आहूत करते हुए अपने कर्तव्य पर ही ध्यान दिया। दोनों छोटे भाई- बहन के भविष्य का निर्माण ही उसकी प्राथमिकता बन गया था। भाई- बहन में से किसी का सिर भी दुखता तो वह परेशान हो जाती। यदि उनमें से कोई भी इधर- उधर चला जाता तो वह बेचैन हो जाती। प्रेम की पराकाष्ठा यही है, जिससे व्यक्ति प्रेम करता है, उसके लिए कुछ भी कर सकता है। आशा भी अपने भाई -बहन को अपनी जान से अधिक चाहती थी। इसलिए उनकी खुशी में ही खुश थी। उसकी मेहनत और परवरिश का सुपरिणाम यह हुआ कि उसकी छोटी बहन सुधा आई पी एस में सलैक्ट होकर ट्रेनिंग करने चली गई और छोटा भाई स्कालरशिप लेकर पढ़ रहा था।

परमेश्वर उसके सहायक थे। इसीलिए वह हर विपत्ति से लड़ते हुए मंजिल की ओर निरंतर बढ़ रही थी।

शीत ऋतु का आरंभ हुआ। पेड़ से ओस गिरती थी तो बदन सिहर उठता था। ठंडी हवा बदन को चीरकर रख देती थी। उस समय भी वह सारे काम पूरी तल्लीनता से कर रही थी और अपने भाई- बहन की हर जरूरत को पूरा कर रही थी। बहनों के बारे में ही सोचती रहती थी। कई बार वह रात को जाग जाती थी तो फिर उसकी आँखों में नींद वापस न लौटती थी। इस तरह शीत ऋतु में भी उसका जीवन एक निश्चित क्रम में व्यतीत हो रहा था। तीन दिन बाद सुधा आई.पी.एस. ऑफीसर बनकर वापस आने वाली है, यह सोचकर वह बहुत खुश थी। उसके आने पर उसका स्वागत किस तरह करना है, इसकी भी तैयारियाँ वह कर रही थी।

उस शाम जब वह वापस लौटी तो करन घर में नहीं था। उसने उसे चारों तरफ खोजा पर वह कहीं नहीं मिला तो घबरा गई और पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराई।

तीन दिन बीत गए मगर करन का कोई सुराग न मिला। रात को उसकी आँखों से नींद गायब थी और दिन में वह करन को खोजने की भरसक कोशिश कर रही थी।

अगले दिन सुबह के दस बजे होंगे, । सुधा घर आ पहुँची। उसकी आँखों में सफलता से उदित दीप्ति थी और वह बहुत खुश थी क्योंकि उसे उस दिन माँ-बाप और बहन का मिश्रित प्यार देने वाली आशा की आशा, विश्वास और तपस्या का सुपरिणाम मिला था। उसे देखते ही आशा की आँखों से आँसू झर- झर झरने लगे और वो सुधा से लिपटकर रोते हुए बोली-" सुधा ! तीन दिन से... करन का ...कोई पता नहीं कि वो कहाँ है। "

यह सुनकर सुधा के हाथों से मिठाई का डिब्बा छूट गया। उसने बड़ी बहन को दिलासा दी। उसे समझते देर न लगी कि करन के साथ कोई हादसा हुआ है।

इकलौते भाई के अनिष्ट की चिंता से उसकी आँखों में शोले जल उठे। वह उसे खोजने निकली परन्तु करन का कुछ पता नहीं चला। अपने भाई के किडनैपर तक पहुँचना उसका उद्देश्य बन गया और उसकी आँखों में अपराधी तक पहुँचने की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठी।

सुधा करन को तलाश करने के लिए गाँव-गाँव घूम रही थी। आस-पास के सभी गाँव उसने छान मारे। किसी गाँव की कोई भी गली अछूती नहीं छोड़ी परंतु करन का कोई सुराग न मिला।

सुधा को न खाने का ध्यान था न सोने की चिंता; हो भी क्यों ?, जिसके छोटे भाई का अपहरण हुआ हो उसे भला चैन कहाँ ?

उसके मस्तिष्क में विचारों की तीव्र आँधी चल रही थी और वह किसी भी तरह अपने भाई तक पहुँचने के लिए व्याकुल थी।

सुधा ने चारों ओर सी.आई.डी. का जाल बिछा दिया था फिर भी करन की कोई खबर नहीं मिल पाई। इस तरह कई महीने बीत गए और सुधा की तैनाती धौलपुर हो गई। वहाँ वह स्वयं शहर के रास्तों का गंभीर निरीक्षण कर रही थी।

एक दिन अचानक एक घटना घटी। उस सुबह उसकी घड़ी में एक बज चुका था। वह पेट्रोलिंग के बाद अपनी जीप में बैठी ऑफिस की ओर जा रही थी कि तभी उसे एक लड़की दिखाई दी। लड़की उसे कुछ घबराई सी लगी तो सुधा ने गाड़ी रोकी और उसे बुलाया। लड़की डरती-सहमती उसके पास आई तो सुधा ने उससे पूछा - ''तुम इतनी घबराई हुई क्यों हो? ''

लड़की ने उत्तर दिया- "मैडम! मेरे पीछे गुंडे पड़े हैं,वे मुझे मार देना चाहते हैं। "

"... लेकिन... क्यों?"

सुधा ने उसे जीप में बिठाते हुए पूछा।

लड़की ने उत्तर दिया -" वे किडनैपर हैं। किसी को भी किडनैप करके उसके आंतरिक अंगों को बेचते हैं। "

इसके लिए पहले वे ब्लड टैस्ट करते हैं। उन्हें जिस ब्लड ग्रुप के अंगों का खरीदार मिलता है,उसी ग्रुप वाले व्यक्ति का आपरेशन कर दिया जाता है और उसके अंग अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बेच दिए जाते हैं। "

कुछ रुककर उसने आगे कहा -" उन्होंने मेरा अपहरण ...छः महीने पहले किया था। तब... मुझे कई दिन... बेहोश रखा गया फिर चार दिन... भूखे रखा गया....जब मेरी हिम्मत टूट गई... तब उन्होंने मुझे... खाना तो दिया... लेकिन ....कड़ी निगरानी में रखा गया। आज़ वो .... मेरा आपरेशन... करने वाले थे.... मैंने शौच जाने के बहाने... वहाँ से भागने की कोशिश की तो... वे मेरा पीछा करने लगे। "

सुधा ने कहा -"तुम निश्चिन्त रहो! निडर होकर मुझे वहाँ का रास्ता बताओ। एक दिन हर असुर का अंत जरूर होता है। इस घिनौने रैकेट का सरगना जो भी हो, मैं उसे नहीं छोड़ूंगी। ''

लड़की ने साहस जुटाकर सुधा को रास्ता बताया। तब तक सुधा ने पुलिस फोर्स को बुला लिया और मानव अंगों की तस्करी करने वाले गिरोह को चारों ओर से घेर लिया। दोनों ओर से गोलियों की बौछार होने लगी और अंततः तस्करों को पुलिस बल के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा। सुधा ने उन्हें गिरफ्तार किया और वहाँ किडनैप करके रखे गए लड़के - लड़कियों को मुक्त कराया। सुधा ने देखा कि उन्हीं मुक्त कराए गए लोगों में उसका अपना भाई करन भी था। उसने उन सभी का मैडीकल चैकअप कराया और उनके घर तक पहुँचाया।

सुधा ने कहा - ''आप सभी स्वयं पर विश्वास करो तथा भगवान को उनकी कृपा के लिए धन्यवाद दो क्योंकि आज भगवान की कृपा से ही हम अपराधियों को पकड़ने में सफल हुए हैं। "

करन होश में आया तो उसने बताया -" दीदी! मैं इतने दिन बाद भी सुरक्षित हूँ क्योंकि मेरा ब्लड ग्रुप बी नैगेटिब है। इस ग्रुप का कोई ग्राहक उन्हें नहीं मिला। आज़ आपने मुझे बचा लिया दीदी!मेरी ज़िंदगी आपकी अमानत है। "

वह बोली-" नहीं करन! आज़ मैं जो भी हूँ आशा दीदी के त्याग और तपस्या के कारण हू। यह दीदी के त्याग, तपस्या और आशीर्वाद का ही परिणाम है कि मैं मानव तस्करी करने वाले आदमखोरों से समाज को आजाद कराने में सफल हुई हूँ। " करन ने उसे बताया कि उसकी कनपटी पर पिस्तौल तानकर एक व्यक्ति ने उसका अपहरण किया था... वह अपहर्ता कह रहा था कि तेरे बाप ने मुझसे एक लाख रुपए लिए थे मैं उन्हीं के लिए तुझे यहाँ लाया हूँ। "।

सुधा सोचने लगी कि वह निश्चित ही माखन लठैत था क्योंकि वर्षो पहले माखन लठैत ही उसके पापा से एक लाख रुपए मांगने आया था और न लौटा पाने पर उसी रात पापा की हत्या हो गई थी। तभी उसके मोबाइल पर कोतवाली से कॉल से उसे पता चला कि गिरोह का सरगना दिलावर खान और माखन लठैत भी हमारे द्वारा गिरफ्तार किए गए लोगों में हैं।

उस शाम करन को लेकर लौटकर सुधा घर लौटकर आशा से मिली और बोली - ''दीदी! आपके आशीर्वाद से आज़ हमारा भाई हमारे साथ है। जानती हो इसका अपहर्ता हमारे माता - पिता का हत्यारा माखन लठैत ही है,जो पकड़ा गया है और पुलिस की हिरासत में है। दीदी आपके आशीर्वाद से ही आज दिलावर खान और माखन लठैत जैसे अपराधियों को उनके अपराधों की सज़ा मिली है। यदि आपने मुझे पढ़ा-लिखाकर इस काबिल न बनाया होता तो शायद बेबस लोगों पर होने वाले अत्याचार कभी कम नहीं होते। ''

इतना कहकर उसने आशा के पैर छूते हुए कहा- ''दीदी! मुझे आशीर्वाद दो कि मैं सदैव अपने प्रयासों में सफलता अर्जित करूँ। ''

आशा की आँखों में चिर सफलता की आशा झलक रही थी। वह सुधा से बोली -" सुधा! मुझे गर्व है कि तुम मेरी बहन हो... लेकिन सुधा! मैं माखन लठैत से मिलना चाहती हूँ। "

सुधा उसे माखन के पास ले गई। आशा ने उससे कहा -" माखन लठैत! तूने मेरे पिताजी को एक लाख रुपए दिए थे... वो एक लाख रुपए मय ब्याज मैं तुझे वापस करूंगी लेकिन तेरे.. गुनाहों की सज़ा पूरी होने के बाद... ध्यान रखना तूने निर्दोष लोगों को सताया इसकी सज़ा तो तुझे इस जन्म में ही नहीं जन्म - जन्म तक भोगनी होगी। "

इतना कहकर वह सुधा के साथ वापस लौट गई लेकिन माखन लठैत का सिर शर्म से झुक गया और उसके हृदय में प्रायश्चित की आग जल उठी।

-आचार्य नीरज शास्त्री, 34/2, 'गायत्री निवास, लाजपत नगर, एन.एच -2, मथुरा 281004, मो. 9259146669

प्रतियोगिता हेतु कहानी

कढ़ा हुआ रूमाल

सुरेश बाबू मिश्रा

तिनसुखिया मेल के ए.सी. कोच में बैठे प्रोफेसर गुप्ता कोई पुस्तक पढ़ने में मशगूल थे। वे एक सेमीनार में भाग लेने गौहाटी जा रहे थे।

सामने की सीट पर बैठी एक प्रौढ़ महिला बार-बार प्रोफेसर गुप्ता की ओर देख रही थी। वह शायद उन्हें पहचानने का प्रयास कर रही थी। जब वह पूरी तरह आश्वस्त हो गई तो वह उठकर प्रोफेसर गुप्ता की सीट के पास गई और उनसे शिष्टता पूर्वक पूछा-"सर! क्या आप प्रोफेसर गुप्ता हैं ?"

यह अप्रत्याशित सा प्रश्न सुनकर प्रोफेसर गुप्ता असमंजस में पड़ गए। उन्होंने महिला की ओर देखते हुए कहा-"मैंने आपको पहचाना नहीं मैडम। "

"मेरा नाम माधवी है और मैं लखनऊ यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हूँ। मेरी एक सहेली थी प्रोफेसर शिवानी। " वह महिला बोली।

"थी से आपका क्या मतलब है ?" प्रोफेसर गुप्ता ने उनकी ओर देखते हुए पूछा।

वह अब इस दुनिया में नहीं है। उसने किसी को अपनी किडनी डोनेट की थी। उसी दौरान शरीर में सेप्टिक फैल जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई थी।

"क्या ?" प्रोफेसर गुप्ता का मुँह आश्चर्य से खुले का खुला रह गया था।

"जी सर! उसे शायद अपनी मृत्यु का अहसास पहले ही हो गया था। मरने से दो दिन पहले उसने मुझे यह रूमाल और एक पत्र आपको देने के लिए कहा था। उसके द्वारा दिए हुए पते पर मैं आपसे मिलने दिल्ली कई बार गई मगर आप शायद वहाँ से कहीं और शिफ्ट हो गये थे। " यह कहकर उन्होंने वह रूमाल और पत्र प्रोफेसर गुप्ता को दे दिया।

वह महिला जाकर अपनी सीट पर बैठ गई। प्रोफेसर गुप्ता बुत बने अपनी सीट पर बैठे थे।

तिनसुखिया मेल अपनी पूरी रफ्तार से दौड़ रही थी और उससे भी तेज़ रफ्तार से अतीत की स्मृतियाँ प्रोफेसर गुप्ता के मानस पटल पर दौड़ रही थीं।

आज से पच्चीस वर्ष पूर्व उनकी तैनाती एक कस्बे के डिग्री कॉलेज में प्रोफेसर के रूप में हुई थी। कॉलेज कस्बे से दो-ढाई किलोमीटर दूर था। कॉलेज में छात्र-छात्राएँ दोनों पढ़ते थे। कॉलेज का अधिकांश स्टाफ कस्बे में ही रहता था।

प्रोफेसर गुप्ता का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था और उनके पढ़ाने का ढंग बहुत प्रभावी। इसलिए छात्र-छात्राएँ उनका बड़ा सम्मान करते थे। वे बड़े मिलनसार और सहयोगी स्वभाव के थे इसलिए स्टाफ में भी उनके सबसे बड़े मधुर सम्बन्ध थे।

एक दिन वे क्लास में पढ़ा रहे थे, तभी चपरासी उनके पास आया और बोला-"सर! प्रिंसिपल सर आपको अपने आफिस में बुला रहे हैं। "

प्रोफेसर गुप्ता सोच में पड़ गये। फिर वे प्रिंसिपल रूम की ओर चल दिए।

उन्हें देखकर प्रिंसिपल साहब बोले-"प्रोफेसर गुप्ता, बी.ए. सेकेण्ड ईयर की छात्रा शिवानी अचानक क्लास में बेहोश हो गई है। उसे किसी तरह होश तो आ गया है, मगर अभी उसकी तबियत पूरी तरह ठीक नहीं है। आप ऐसा करिए उसे अपने स्कूटर से उसके घर छोड़ आइए। "

उस समय स्टाफ के दो-तीन लोगों के पास ही स्कूटर था। शायद इसी कारण प्राचार्य जी ने मुझे यह कार्य सौंपा था।

मैं शिवानी को स्कूटर पर बैठा कर कस्बे की ओर चल दिया। हम लोग कस्बे पहुँचने ही वाले थे कि सड़क के किनारे खड़े बरगद के पेड़ के पास शिवानी ने कहा-"सर स्कूटर रोक दीजिए। "

मैंने स्कूटर रोक दिया और शिवानी से पूछा-"क्या बात है शिवानी क्या तुम्हें फिर चक्कर आ रहा है ?"

"मुझे कुछ नहीं हुआ सर, मैं तो आपसे एकान्त में बात करना चाहती थी, इसलिए मैंने कॉलेज में बेहोश होने का नाटक किया था। " उसने बड़े भोलेपन से कहा।

"क्या ?" मैंने हैरानी से उसकी ओर देखा। फिर मैंने उससे पूछा-"आखिर तुमने ऐसा क्यों किया ? और तुम मुझसे क्या बात करना चाहती हो ?" सर! मैं आपसे प्यार करती हूँ, और आपको यही बात बताने के लिए मैंने यह नाटक किया था।" वह मेरी ओर देखकर मुस्करा रही थी।

मैं हतप्रभ खड़ा था। मुझे समझ में ही नहीं आ रहा था कि मैं उससे क्या कहूँ।

काफी देर तक मैं चुपचाप खड़ा रहा। फिर मैंने उससे कहा-"यह तुम्हारी पढ़ने की उम्र है, प्यार करने की नहीं। अभी तो तुम प्यार का मतलब भी नहीं जानतीं।"

"आप ठीक कह रहे हैं सर। मगर मैं अपने इस दिल का क्या करूं, यह तो आपसे प्यार कर बैठा है।" वह मेरी ओर देखकर मुस्कुराते हुए बोली।

"तुम्हें मालूम भी है कि मैं शादी शुदा हूँ और मेरे दो बच्चे हैं। और मेरी तथा तुम्हारी उम्र में कम से कम बीस साल का अन्तर है।" मैंने उसे समझाते हुए कहा।

"मुझे इन बातों से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है सर। मैं तो केवल एक ही बात जानती हूँ कि मैं आपसे प्यार करती हूँ, बेपनाह प्यार।" वह दार्शनिक अंदाज़ में बोली।

मैंने उसे समझाने का हर सम्भव प्रयास किया मगर उस पर मेरी दलीलों का कोई असर नहीं हुआ।

मैंने उससे यह कहकर कि अब तुम ठीक हो इसलिए यहाँ से अपने घर पैदल चली जाना मैं कॉलेज लौट गया।

मैंने इसे उसका बचपना समझा और इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया। शिवानी किसी न किसी बहाने से मेरे निकट आने और मुझसे बात करने का प्रयास करती रहती, परन्तु वह मुझसे जितना निकट आने का प्रयास करती मैं उतना ही उससे दूर भागता। मैं नहीं चाहता था कि कॉलेज में यह बात चर्चा का विषय बने।

कस्बे में छोटे बच्चों का कोई कान्वेंट स्कूल नहीं था इसलिए मैं यहाँ अकेला ही किराए पर रहता था। मेरी पत्नी और बच्चे मेरे घर मम्मी-पापा के साथ रहते थे।

एक दिन शाम का समय था। मैं कमरे पर अकेला बैठा कोई किताब पढ़ रहा था। तभी दरवाज़े पर खटखट हुई मैंने उठकर दरवाजा खोला सामने शिवानी खड़ी थी। उसे इस प्रकार अकेले अपने कमरे पर देख मैं गहरे असमंजस में पड़ गया।

इससे पहले कि मैं कुछ कहता वह कमरे में आकर एक कुर्सी पर बैठ गई। आज पहली बार मैंने उसे ध्यान से देखा। बीस-इक्कीस वर्ष की उम्र, लम्बा-छरहरा बदन, गोरा चिट्टा रंग और आकर्षक नयन-नक्श। उसके लम्बे घने बाल उसकी कमर को छू रहे थे। सादे कपड़ों में भी वह बेहद सुन्दर लग रही थी।

कमरे के एकान्त में एक बेहद सुन्दर नवयुवती मेरे सामने बैठी है और वह मुझसे प्यार करती है यह सोचकर मेरे मन में गुदगुदी सी होने लगी। मैंने अपने मन को संयत करने का बहुत प्रयास किया मगर मैं अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने में असफल रहा। मन में तरह-तरह की हसीन कल्पनाएँ उठने लगीं। मेरे चेहरे का रंग पल-पल बदलने लगा।

इस सबसे बेखबर शिवानी कुर्सी पर शान्त और निश्चल बैठी थी। उसके एक हाथ में सफेद रंग का एक रूमाल था। मैं उठकर उसके पास गया और उसके गालों को थपथपाते हुए उससे पूछा-"शिवानी तुम यहाँ अकेले क्या करने आई हो ?"

उसने मेरी आँखों में झाँककर देखा पता नहीं उसे मेरी आँखों में क्या दिखाई दिया। वह झटके के साथ कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई। उसके चेहरे के भाव एकाएक बदल गये थे। मेरे हाथों को अपने गालों से झटके के साथ हटाते हुए वह बोली-"प्लीज डोन्ट टच मी। आई डोन्ट लाइक दिस।"

मेरे ऊपर पड़ा बुद्धिजीवी का लवादा फटकर तार-तार हो चुका था। शिवानी का यह व्यवहार मेरे लिए अप्रत्याशित था। मुझे समझ में ही नहीं आ रहा था कि मैं उससे क्या कहूँ ?"

"तुम तो कहती हो कि तुम मुझसे बहुत प्यार करती हो।" मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"हाँ, सर मैं आपको बहुत प्यार करती हूँ। मगर मेरा प्यार गंगाजल की तरह पवित्र और कंचन की तरह खरा है। उसने दृढ़ स्वर में कहा।

"यह सब फिल्मी डायलॉग है।" मैंने खिसियानी हँसी हँसते हुए कहा।

"सर ज़रूरत पड़ने पर मैं यह साबित कर दूँगी कि आपके प्रति मेरा प्यार कितना गहरा है।" यह कहकर वह कमरे से चली गयी थी। काफी देर तक मैं अवाक खड़ा रहा था फिर अपने काम में लग गया था।

इसके बाद शिवानी ने मुझसे बात करने या मिलने का प्रयास नहीं किया। मैं भी धीरे-धीरे उसे भूल गया। कुछ समय बाद मेरा

उस कॉलेज से स्थानान्तरण हो गया। सरकारी सेवा होने के कारण कई जगह स्थानान्तरण हुए और अन्त में मैं दिल्ली में सेटल्ड हो गया।

दो साल पहले मुझे किडनी प्रॉब्लम हो गई। कई महीने तक तो डायलिसिस पर रहा फिर डॉक्टरों ने कहा कि अब किडनी ट्रांसप्लांट के अलावा और कोई चारा नहीं है। मैंने अपने परिवार में इस सम्बन्ध में सबसे बातचीत की। मेरी पत्नी दोनों बेटों और बेटी ने राय दी कि पहले हमें किडनी के लिए विज्ञापन देना चाहिए, हो सकता है कि कोई जरूरतमंद पैसे के लिए अपनी किडनी डोनेट करने के लिए तैयार हो जाये। अगर दो-तीन बार विज्ञापन देने के बाद भी काई डोनर नहीं मिलता है तो हम लोग फिर इस बारे में बातचीत करेंगे।

बेटे ने राजधानी के सभी अखबारों में किडनी डोनेट करने वाले को बीस लाख रुपये देने का विज्ञापन छपवाया। विज्ञापन में मेरा नाम पूरा पता भी दिया गया। विज्ञापन दिये एक महीना हो गया था। जिस अस्पताल में मेरा इलाज चल रहा था। एक दिन वहाँ से फोन आया-"सर आपके लिए गुड न्यूज है, आपको किडनी देने के लिए एक डोनर मिल गई है। उसकी उम्र पैंतालीस साल के करीब है और वह आपको किडनी डोनेट करने के लिए तैयार है, मगर उसकी एक शर्त है कि किडनी ट्रांसप्लांट होने से पहले उसका नाम पता किसी को नहीं बताया जाये।

मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि डोनर अपना नाम पता क्यों नहीं बताना चाहती है। फिर हम सबने सोचा कि शायद उसकी कोई मजबूरी होगी।

ट्रांसप्लांट की सारी फार्मल्टीज पूरी कर ली गईं और नियत तारीख पर मेरी किडनी का ट्रान्सप्लांटेशन हो गया जो पूरी तरह से सफल रहा।

इसके कई दिन बाद जब मैं अपने को काफी सहज अनुभव करने लगा तो मैंने एक दिन डॉक्टर साहब से पूछा-"डाक्टर साहब वह लेडी कैसी है जिन्होंने मुझे अपनी किडनी डोनेट की थी।"

कुछ देर तक डाक्टर साहब खामोश रहे फिर वे बोले-"वह लेडी तो परसों बिना किसी को कुछ बताये अस्पताल से चली गई। हैरानी की बात यह है सर कि वह अपनी डोनेशन फीस भी नहीं ले गई।

"क्या ?" मेरा मुँह विस्मय से खुले का खुला रह गया था। जब मैंने यह बात अपने परिवार के लोगों को बताई तो उन सबको बड़ी हैरानी हुई। हम लोगों को यह बात समझ में ही नहीं आ रही थी कि आज के इस आपाधापी के दौर में बीस लाख रुपये ठुकरा देने वाली यह लेडी आखिर कौन थी ? काफी दिनों तक मैं इसी उधेड़बुन में रहा। मैंने उस लेडी का पता लगाने की हर सम्भव कोशिश की मगर इसके बारे में कुछ पता नहीं चला।

"आपको कहाँ तक जाना है सर। अचानक टी.टी.ई. ने आकर प्रोफेसर गुप्ता की तन्द्रा को भंग कर दिया। वे अतीत से वर्तमान में लौट आए। टिकट चेक करने के बाद टी.टी. चला गया।

प्रोफेसर गुप्ता ने वह रूमाल उठाया जो शिवानी ने उन्हें देने के लिए प्रोफेसर माधवी को दिया था। उन्होंने रूमाल को पहचानने की कोशिश की। यह शायद वही कढ़ा हुआ रूमाल था जो शिवानी उन्हें देने उनके कमरे पर आई थी। सफेद रंग के उस रूमाल के एक कोने में सुनहरे रंग से एस. कढ़ा हुआ था। एस. यानी शिवानी के नाम का पहला लेटर।

अब प्रोफेसर गुप्ता को डोनर की सारी पहेली समझ में आ गई थी। उन्होंने रूमाल में रखे हुए तुड़े-मुड़े पत्र को खोलकर पढ़ा, लिखा था-

प्रोफेसर साहब,

आपका जीवन मेरे लिए बहुत बहुमूल्य है इसलिए मैंने अपने जीवन को संकट में डालकर आपके प्राणों को बचाया। मगर मैंने ऐसा करके आप पर कोई एहसान नहीं किया। मुझे तो इस बात की खुशी है कि मैं जिसे हृदय की गहराइयों से प्यार करती थी उसके किसी काम आ सकी।

आपकी शिवानी

पत्र पढ़कर प्रोफेसर गुप्ता का मन गहरी वेदना से भर उठा था। शिवानी का यह निःस्वार्थ प्यार देखकर उनकी आँख से आँसू बहने लगे। उन्होंने शिवानी का दिया हुआ रूमाल उठाया और उससे अपने आँसुओं को पोछने लगे। ऐसा करके शायद उन्होंने शिवानी के अमर प्रेम को स्वीकार कर लिया था।

सुरेश बाबू मिश्रा

ए-979, राजेन्द्र नगर,

बरेली-243122 (उ०प्र०)

मो. 9411422735

E-mail : sureshbabubareilly@gmail.com

प्रतियोगिता हेतु

वेला

विनोद कुमार दवे

"भावरी छोड़ दी?"

"तो करूँ के? पूरी उमर भावरी करदा ही रहूँ का? पराया खेतां में हाड़ तोड़ता रहूँ ! अब म्हें कितरो ही जोखूँ, कुणसी ज़मीन म्हारा नाम व्है जासी? ज़मींदार साब रा टाबर दिल्ली आळा अंग्रेजी स्कूल मांय पढ़े? हाँय, उण रो घर देख्यो है? चमचमाता फर्श मांय तो मूंडों तक साफ़ दीखै। सवेर नाश्ता में काजू, पिस्ता, बादाम खावै। जू गाड़ी पसंद आवे, उ उठा लावै। उण रो बाथरूम तक आपां रा झौंपड़े तै बड़ो है!"

फूंकनी से चूल्हा सुलगाने की नाकाम कोशिश के बाद फेफड़ों ने धुआँ निगल लिया, बदी को इतनी ज़ोर से खांसी आयी, मानो खांसी के साथ साथ दम भी निकल जाएगा। आँसू पोंछते पोंछते बदी बुदबुदाई, "ज़मींदार साब रे नाम रो रोवणो फेर चालू हो गयो!"

"तो कितरा दिन पराया खेतां मांय हाड़ तोड़ता रहूँ. औसर चूक्या ने मौसर न मिलै। ", वेला ने अपनी बात दोहराई और फिर पैर पटकते हुए चला गया।

बाहर पलटन जुट गई है। सभी नवयुवक, बेरोजगार किन्तु जोश और उत्साह से भरे हुए। कुछ आठवीं दसवीं फेल, कुछ मरते मरते पास, कुछ कहलाने को पढ़े लिखे किन्तु हैं अनपढ़ और एक दो ऐसे भी हैं जो पहले दिन ही स्कूल से दौड़ आये थे और फिर कभी उस अजायबघर की तरफ मुँह नहीं किया। हां, गाँव का स्कूल किसी अजायबघर से कम तो नहीं था। दीवार बरसों से गिरने को तैयार दिखती लेकिन गिर नहीं रही थी। आम रास्ता स्कूल के ठीक बीच से निकलता। तीज त्योहार हो या हो शादी, बारात, ढूंढ, गौना, सब का जुलूस स्कूल के बीच से ही निकलना था। न जाने किसकी शादी का ढोल बजता, नाचते स्कूल के बच्चे। न जाने किसकी अर्थी निकलती, स्कूल के बच्चे रोने लग जाते। पढ़ाई के अलावा सब कुछ होता था स्कूल में। किसी अंधेरी रात या छुट्टी की सूनी दोपहर अगर स्कूल की दीवार भरभरा कर गिर पड़ी होती, तो दो चार प्रेमी जोड़े अवश्य ही मलबे से बाहर निकाले जाते।

वेला के इस गिरोह में अधिकतर उम्र में वेला से छोटे हैं, हाँ दो चार बड़े भी होंगे। कुछ लड़कों ने साफ़ सुथरे कपड़े पहन रखे हैं और कुछ के कपड़े मैले कुचैले हैं। फटने की कगार पर पहुँचे कपड़े ग़रीबी की व्यथा कथा स्पष्ट कहते हैं।

"ग़ज़ब मज़ो आयो काल तो। "

"मास्साब रो तो मूत निकलतो निकलतो बच्यो!"

"म्हारे कनै वीडियो है, देखसी तो जाणसी कै मास्साब केंई भीगी बिल्ली बणगा!"

"हमें इसी तरह एक रहना होगा। तभी गाँव में सुधार हो सकेगा। देखा नहीं, हाथ पैर कांप रहे थे मास्टरों के। वो अंग्रेजी वाले को देखा था, माथे पर पसीना छलछला आया था। साले, हमारे बच्चों से झाड़ू निकलवाएंगे। हमारे बच्चे संडास धोएंगे क्या? और लैब वाला कमरा देखा था? कितनी धूल जमी थी। सरपंच किस काम का। घुग्घू साला, मास्टरों के घाघरे में घुसा रहता है। मुझ जैसा सरपंच होगा तो ये सरकारी मुलाज़िम पंचायत के तलवे चाटेंगे। लेकिन ऐसा बायला सरपंच बना है, साला कभी देखने तक नहीं जाता कि स्कूल में मास्टर पढ़ा रहे हैं या फिर बैठे बैठे कुर्सियां तोड़ते रहते हैं। गाँव का कबाड़ा कर दिया है इस सरपंच ने। अगले चुनाव बाद देखना, लोग हराएंगे इसे। हराना ही पड़ेगा। चांचियौ ऊंट धणी ने खावै। ", वेला नेता बनने की कोशिश में हिंदी बोलने लगा था। उसके पीछे और कुछ साथी हिंदी में बात करते।

"पोषाहार तक तो चेक करने नहीं जाता पंचायत से कोई। साले सब चोर है। गेहूँ चावल मारते होंगे स्कूल से। "

"पोषाहार? पशु आहार है। वह तो जानवर भी न खाएँ। मैंने ख़ुद खाया है ना आठवीं तक। निठल्ली पोषाहार बनाने वाली कुक कम हेल्पर, दाल चढ़ाती है, उसमें मोटे गोल बाटे बनाकर डाल देती है। बाटे सिंकते तक नहीं। कच्चे रहते हैं। बच्चे बेचारे टूटे स्केल से, कांटों से उसे काटते हैं, फिर ठंडा करके चबाते रहते हैं। पेट दुखता है वो अलग। तुम लोगों को पता भी नहीं होगा, सरकारी नियम है। हर रोज अलग-अलग खाना बनना चाहिए। कभी दाल रोटी, कभी चावल खिचड़ी, कभी हरी सब्जी, सोयाबीन बड़ी, खीर पूड़ी। वहाँ शिवपुर में तो सप्ताह में एक दिन स्पेशल डाईट बनाते हैं, लापसी, सीरा। फिर हमारे बच्चों ने क्या बिगाड़ा हैं?"

"इन मास्टरों को तो उलटा लटकाकर पीटना चाहिए। मुर्गा बनाकर पूरे गाँव में घुमाना चाहिए। "

"साला गणित वाला मास्टर हम पर ही चढ़ रहा था। कहता है, हम बच्चों को स्कूल नहीं भेजते, घर खेत का काम करवाते हैं। "

"मुझे सरपंच बनने दो। फिर देखता हूँ, कौन बच्चों को घर पर रखता है। "

"अब आज?"

"आज हॉस्पिटल चलते हैं। "

हॉस्पिटल अर्थात उप स्वास्थ्य केंद्र। चार वार्ड के इस छोटे से गाँव में उप स्वास्थ्य केंद्र ही हॉस्पिटल है। हाँ, गाँव में एक डॉक्टर साहब है जो असल में झोलाछाप बंगाली है, नीम के पेड़ के नीचे कुर्सी लगाकर बैठा रहता है। उप स्वास्थ्य केंद्र की एएनएम को लोग नर्स मैडम कहते हैं।

पूरी पलटन आज उप स्वास्थ्य केंद्र का निरीक्षण करने चल पड़ी है। कल इन्होंने गाँव की स्कूल का निरीक्षण किया था जिसमें एक लंबी बहसबाजी के बाद प्रिंसिपल ने वेला को ऑफिस में ले जाकर सरकारी कार्य में बाधा डालने का केस दर्ज करवाने की धमकी दी। वेला घबरा गया किन्तु बाहर आकर उसने अपने लड़कों के सामने ऐसा कुछ ज़ाहिर न होने दिया। सभी अपनी शेखी बघारते हुए चले आये।

मन ही मन वेला सावचेत हैं। उप स्वास्थ्य केंद्र में सावधानी से बात करेगा, कहीं ऐसा न हो कि इन लड़कों के सामने ही लताड़ पड़ जाए। कल भी अच्छा हुआ कि प्रिंसिपल ने ऑफिस में अकेले में धमकाया, नहीं तो इज़्ज़त का भाजीपाला हो जाता।

वेला शिवपुर के ज़मींदार साहब के वहाँ भावरी करता } था। ज़मींदार साहब की जीवन शैली देखकर खासा प्रभावित भी था। ज़मींदार साहब सरपंच रह चुके थे। जब वे अपनी सरपंचाई की बातें करते, वेला मंत्रमुग्ध होकर सुनता रहता। धीरे धीरे ज़मींदार साहब के सिर पर घूमने वाला सत्ता के लोभ का चक्र वेला के सिर पर भी घूमने लगा।

बदी ने ख़ूब समझाया, "कठै राजा भोज, कठै गंगू तेली! ज़मींदार साब करोड़पति, अर आपी रोड़पति! उकां बंगला है, अर आपां री झौंपड़ी तो झौंपड़ियूं रे नाम माथै कलंक है! उकां कपड़ा तो एकदम धवळा धट, अर म्हारा चीथड़ा देख, असल रंग तो कद खो गयो पतो ही कोनी! आपी उकां पाछै उछळ कोनी सकां!"

वेला पर कोई असर नहीं पड़ा। छोटा सा गाँव था। साढ़े चार साल ही हुए थे, पंचायत बने। आने वाले चुनाव में वेला अपना झंडा गाड़ना चाहता था। और उसकी तैयारी ज़ोर-ओ-शोर से शुरू कर दी थी। पलटन तो साथ ही थी, हिंदी बोलने वाला, भाषण देने वाला नेता मिल गया, रात को दारू पार्टी का बंदोबस्त हो गया और क्या चाहिए था बेरोजगार छोकरों को। वेला को पंचायत महल नजर आता। ख़ुद के सिर पर वह सरपंचाई का ताज देखने लगा था।

सब कुछ इतना व्यवस्थित तरीके से चल रहा था कि वेला को लगने लगा, क़िस्मत उसे राजा बनाना चाहती ही है। ज़मींदार साहब आने वाले विधानसभा चुनाव के लिए टिकट पाने की जुगत में लग गए। वेला जाति से भील था। भीलों के कई सारे गाँव विधान सभा क्षेत्र में थे। ज़मींदार साहब टिकट पाने से पहले चुनाव जीतने की तैयारी करने लगे। वे वेला को साथ ले जाते, गांवों में छोटे-छोटे आयोजन करते, गाँव वालों से वादे करते कई सारे।

दिल खोल कर खर्चा करने वाले के पीछे भीड़ जुट ही जाती है। भीड़ ज़मींदार साहब के पीछे थी, वेला ज़मींदार साहब के कंधे से कंधा मिलाकर चल रहा था। वेला को महसूस होने लगा, जैसे भीड़ उसी के पीछे है, वो ही नेता है। वेला भी हिंदी बोलने लगा ताकि पढ़ा लिखा, समझदार और भीड़ से अलग दिखे। वेला भावरी छोड़ कर ज़मींदार साहब का राइट हैंड बन गया।

वह सरपंच चुनाव की तैयारी में जुट गया और वे सारे तरीके अपनाने लगा जो उसने ज़मींदार साहब से सीखे थे। लोगों से मिलना जुलना, सरकारी दफ़्तरों का निरीक्षण करना, सरकारी मुलाज़िमों को डांटना ताकि लोग उसे बड़ा नेता समझे, आम लोगों के हित की बात करना और झूठे सच्चे हर तरह के वादे करना। जल्द ही वेला बेरोजगार नवयुवकों का चहेता नेता बन गया। लोग चमत्कार को ही नमस्कार करते हैं। वेला के व्यक्तित्व में वह चमत्कार था जिसने उसे अपने कुएं का मेंढकराजा बना दिया था।

पहली बार लोगों ने उसकी हिम्मत देखी, जब उसने ग्राम सभा में सब के बीच खड़े होकर ग्रामसेवक और सरपंच पर अंगुली उठायी, "यह जो कंक्रीट की रोड़ बनाई है ग्राम गौरव पथ योजना में, उसका कंक्रीट कहाँ गया? सीमेंट कौन खा गया? 6 इंच छोड़िए, दो इंच भी मोटी नहीं है सड़क। किनारे टूट रहे हैं, सड़क दो चार महीने भी चल जाए तो बड़ी बात हैं। शिकायत करूँगा मैं। "

सरपंच चीखा, "जब पंचायत यहाँ नहीं थी, सरपंच चुनाव बड़े गाँव वाला ही जीतता था। वे लोग सब खा जाते थे। उस टाइम मुँह में दही जमा था क्या? मैंने गाँव में इतना काम करवाया, आप सब लोगों के काम आया, वह नहीं दिखता। "

सरपंच शायद यह कहना चाहता था कि बड़े गाँव वाले सब कुछ खा जाते थे, उसने तो थोड़ा सा ही खाया था।

पहले पहल तो लोग वेला के मज़े लेने के लिए उसे सिर पर चढ़ाने लगे किन्तु जल्द ही लोगों को समझ में आ गया, वेला इतना भी नादान न था कि उनके मनोरंजन के लिए नाचता। वेला को गाँव के उस महल पर कब्जा करना था, जिस पर 'ग्राम पंचायत खूबडली' लिखा हुआ था।

वेला ग्राम सभा पर ही नहीं रुका। उसने पंचायत भवन के निर्माण में भ्रष्टाचार का मुद्दा उठाया। नरेगा में झूठे नाम चलने की बात उठायी, सरकारी ज़मीन पर अतिक्रमण के बारे में सवाल पूछे। और वह केवल बोलने भर से नहीं थमा, उसने बाकायदा ऑनलाइन शिकायत दर्ज करवाई। कभी पटवारी, कभी ग्रामसेवक तो कभी सरपंच को अधिकारियों द्वारा तलब किया जाता। सवाल जवाब होता। सवाल यह नहीं कि भ्रष्टाचार क्यों हुआ? सवाल यह कि उस भ्रष्टाचार पर सवाल क्यों उठा?

बीडीओ ने ग्राम विकास अधिकारी को लताड़ लगाते हुए पूछा भी, "जब तुमसे पचाया नहीं जाता तो इतना खाते ही क्यों हो? बकरी रे मूंडे मांय मतीरो नी खटे।"

ग्राम विकास अधिकारी जानता था कि ज़्यादा खाना अपराध नहीं है, अपराध है भरी महफ़िल में जाहिलों की तरह डकार लेना।

वेला ने मात्र एक डेढ़ महीने में गाँव की राजनीति को हिलाकर रख दिया। सरपंच से असंतुष्ट लोग वेला की तरफ जाने लगे।

स्कूल स्टाफ उस से ख़ौफ़ खाने लगा था। विद्यालय समय पर खुलता, स्टाफ भी पहली घंटी बजते-बजते मरते पड़ते पहुँच ही जाता, उसके डर से स्कूल में साफ़ सफ़ाई रहने लगी, मकड़ियाँ ख़ूब नाराज हुई होगी अपने जालों के बिखर जाने से, मिड डे मील का खाना मेनू के अनुसार बनने लगा, कुर्सियाँ चैन की सांस लेने लगीं क्योंकि उन पर से बोझ हटने लगा था, चॉक के डिब्बे खाली होने लगे, बच्चों की कॉपियां हरी भरी दिखने लगी।

यही हाल उप स्वास्थ्य केंद्र का भी होने वाला था आज के बाद।

वेला की गैंग ने जब धावा बोला, एएनएम मैडम मटर छील रही थी। उप स्वास्थ्य केंद्र के नाम पर एक जर्जर कमरा था, छोटी सी एक और कोठरी थी जिसमें सामान कबाड़ की तरह भरा हुआ था। एक शौचालय था जिसका दरवाज़ा कभी बंद न होता।

वेला ने क्या लताड़ लगायी एएनएम को, उसकी आँखों से आंसुओं की नदी बह चली। वेला को याद था, टीकाकरण के लिए लाये जाने वाले बच्चों के साथ वह कैसा व्यवहार करती थी। वैक्सीन इस तरह लगाती जैसे किसी भैंस को लगा रही है। बच्चे की माँ को तू तड़ाक से बात करती जैसे वैक्सीन लगाने में नर्स के घर का कुछ जा रहा हो। ग़रीब घर की औरतों को एएनएम भी किसी बड़े अधिकारी सी लगती, उसकी डांट से घिग्घी बंध जाती बेचारी माँओं की। पहली बार में ही इतनी बेइज़्ज़ती होती कि दूसरी बार टीकाकरण के लिए आने के बारे में सोचने भर से उनके हाथ पैर काँपने लगते।

"तुम सरकारी लोग इतने निठल्ले क्यों होते हो? प्राइवेट हॉस्पिटल में पूरे दिन भाग दौड़ करती रहने वाली नर्स भी मरीज़ से हँसकर बोलती है। तुम लोग तो जैसे अहसान कर रहे हो आम जनता पर। अजगर ज़्यादा खा ले तो पड़ा रहता है, उसी तरह ज़्यादा पगार के कारण तुम लोगों की चर्बी चढ़ गई है। इस गाँव में रहना है तो ड्यूटी ढँग से करो नहीं तो यूँ चुटकी बजाकर ट्रांसफर कर दूँगा।"

वेला ने सच में चुटकी बजा दी। पूरा गिरोह आँखें फाड़कर देखता रहा, मानो चुटकी बजाते ही ट्रांसफर ऑर्डर आसमान से टपक पड़ेगा, लेकिन ऐसा कुछ न हुआ। जर्जर छत अवश्य ही टपक पड़ने को तैयार दिख रही थी।

आम लोगों के सामने पुलिस सी सख्ती से पेश आने वाली एएनएम मैडम इस झुंड और वेला की धमकियों से इतनी घबरा गई कि उस की आँखों से अश्कों की बारिश होने लगी। वेला को ऐसी कोई शंका न थी। एकबारगी तो डर लगा फिर हौसला बुलंद हुआ कि उसके नाम का सिक्का चलने लग गया था गाँव में। आते वक़्त तो उसने सोचा था, कल शिक्षकों के साथ जैसी बदतमीज़ी की, वैसी यहाँ नहीं करेगा लेकिन नारे लगाने के लिए भीड़ तैयार हो तो जोश आ ही जाता है। अपने प्रताप से एक सरकारी कर्मचारी को रोता देख वेला का सीना गर्व से चौड़ा हो गया। बाकी अनुयायी भी मन ही मन नतमस्तक हो गये अपने नेता के सामने।

गाँव में बात फैल गयी थी। वैसे भी वेला ने जिस तरह का आतंक मचाया था, गाँव में दो ही पक्ष रह गये थे, वेला के समर्थक और वेला के विरोधी। फिलहाल तो गाँव की सत्ता वेला के विरोधियों के पास थी। पंचायत के पहले कार्यकाल में ही इतनी बाधाएँ आ गयी थी कि और कमाने का हौसला पस्त होने लगा था। ठेकेदार, सरपंच, वार्डपंच, ग्रामसेवक सभी को महसूस होता मानो वेला एक तलवार लेकर उनके सिर पर खड़ा है और उन्हें धकेल रहा है जेल की तरफ। सत्ता सुख भोग रहा हर शख़्स वेला

से परेशान था और इस सुख से वंचित हर व्यक्ति खेल का लुत्फ उठा रहा था।

गाँव में बात फैल गयी थी कि वेला एएनएम मैडम को लतिया आया। विपक्षी खेमे को अच्छा मौका मिला। सरपंच ख़ुद आ धमका एएनएम के द्वार। एकबारगी तो एएनएम डर गई कि कोई नई मुसीबत आयी है निरीक्षण करने। लेकिन सरपंच की मीठी चिकनी चुपड़ी बातों से एएनएम ने सुकून की सांस ली।

सरपंच शुभचिंतक की भांति बोलता गया, "मुझे बहुत दुख हुआ इस बात से। मेरे गाँव का कोई व्यक्ति आपके साथ बदतमीज़ी करें, मुझे बर्दाश्त नहीं। मेरी तो इच्छा हुई कि उसे घसीटता हुआ यहाँ तक ले आऊँ और आपके पैरों में गिराकर माफ़ी मंगवाऊँ। लेकिन घरवालों ने रोक लिया। मेरी घरवाली तो कह रही थी, "मैं होती एएनएम मैडम की जगह तो पुलिस केस करती। लज्जा-भंग का मुकदमा दर्ज कराती। " सही ही तो कह रही थी वह। ''

सरपंच ने बात को यही रोक दिया ताकि मैडम के हावभाव देख सके। मैडम झेंपती हुई बोली, "नौकरी करनी है यहाँ। पुलिस केस कैसे करूं?"

"तो, उसके बाप का राज है क्या जो आपको नौकरी नहीं करने देगा वह? हम है ना आपके साथ। मैं ख़ुद चलता हूँ आपके साथ। चलिए, चौकी चलते हैं। ''

"नहीं, नहीं। अभी नहीं। देखते हैं। ''

"इसमें देखना क्या है? उसने आपका अपमान किया है। ऊपर से वीडियो भी बनाया है आपका जो वायरल हो रहा है। ''

एएनएम मैडम के माथे पर बल पड़ने लगे। उन्हें वीडियो का तो ध्यान ही नहीं रहा। आकस्मिक निरीक्षण के वक़्त वेला के गिरोह का एक लड़का, हाथ में मोबाइल लिए खड़ा तो था।

सरपंच ने ख़ूब हवा दी आग को, लेकिन धुआँ-धुआँ ही रहा, आग में न बदला। सरपंच को ऐसा महसूस हो रहा था जैसे भीगे चूल्हे में फूंक मार रहा हो। वह दबाव डालता रहा, "कानून ने इतने अधिकार दिये है महिलाओं को। आपको बिल्कुल डरना नहीं चाहिए। एक बार जेल जाएगा तो उसकी अक्ल ठिकाने लग जाएगी। ''

"लेकिन लज्जा-भंग का केस?"

"तो क्या यह कम है जो कुछ उसने किया है। उसकी हिम्मत बढ़ती रही तो कल उठ के वह कुछ भी कर सकता है। दारुडियों का क्या ही भरोसा। कल दारू पीकर आ गया यहाँ तो न जाने क्या कर बैठे। ''

सरपंच ने ख़ूब कोशिश की लेकिन एएनएम मैडम तैयार न हुई। थक हार कर सरपंच को लौट जाना पड़ा।

उधर, न जाने कैसे यह सारी बात वेला तक पहुँच गई। वेला ओवर-कॉन्फिडेंस का शिकार था। अपने लड़कों के बीच सरपंच को सबक सिखाने की बात मुँह से निकल गई तो उसे अमलीजामा पहनाना भी जरूरी था।

रात का वक़्त था। गाँव में तीन चार ही ऐसे मकान होंगे जिन्हें मकान कहा जा सकता था। इस घर में नया-नया रंगरोगन हुआ था जिसकी गंध मिटी नहीं थी। गैस-चूल्हा और सिलेंडर हथलेवा हुए पति पत्नी की तरह खामोश बैठे थे। स्टील के बर्तन सजे हुए थे किंतु मिट्टी के बर्तन अब तक घरबदर न हुए थे। बाहर आंगन में चूल्हा जल रहा था। मक्की का सोगरा मिट्टी के तवे पर आधा सिंकने के बाद फुलाने के लिए चिमटे के सहारे आँच के आगे रखा हुआ था। पास ही लकड़ियों का गट्ठर खुला पड़ा था। भैंस बैठी बैठी जुगाली कर रही थी। सरपंच चूल्हे के पास खाना खाने बैठा ही था कि दस पंद्रह लोग दनदनाते हुए घर में घुस आये। उनके हाथ में वजनदार लाठियां थी। सरपंच को हिलने तक का वक़्त न मिला। वेला लाठी लिये उसके सिर पर सवार था, "तू हिम्मत केंई करी उण औरत रो कान भरवण री? तू म्हारे पर केस करावैगो?"

"देख वेला! आपां रो आपस रो मामला है! यूँ घर में घुस औरतां अर बालकां माथै लाठी ताणणो मर्दां रो काम कोनी!"

"अर किणी औरत री ओट मांय छिप वार करणो, ओ भी तो मर्दां रो काम कोनी!"

"देख! आपां री दुश्मनी तो यूँ ई पुश्तैनी है! रोटी-बेटी रो रिश्ता तो सालां सूं बंद पड़ियो है! आज तू म्हानै मार भी दियो, तो म्हारा भाई लोग बदलो तो लेवेला ईस! बात ऐसई घणी बढ़सी!"

"मैं तन्नै मारवण कोनी आयो! जद मैं मारवण आसी, तद एकलो आसी! अर म्हारी तो फितरत ही ऐसी कोनी कि निहत्था पै वार करूं! कान खोल कै सुण ले, म्हारा खिलाफ कुण्यै भड़कावण की कोशिश करी, तो अंजाम घणो खराब होसी!"

सरपंच ने बस हाँ में सिर हिला दिया।

वे लोग जिस तरह दनदनाते हुए आये थे उसी तरह लौट गये। देखते ही देखते भीड़ जुट गई। किसी ने सुझाव दिया, "चौकी चालां!" "म्हारो मामला म्हें ख़ुद निपटासूं! पुलिसवालां री इतरी औकात कोनी! उ घर में घुसण री हिम्मत करी, अर म्हें भी नामर्द कोनी! ईंट रो जवाब पत्थर सूं दियासूं! बस थोड़का माह रुक जाओ, चुनाव निपट जावै, फेर देखासूं!"

बात जंगल में आग की तरह फैली। वेला की इज़्ज़त और बढ़ गई उसके अपने लोगों में। उसका उजड्डपन लोगों को अपनी तरफ खींचने लगा था।

***

रात अभी उनींदी थी, सूरज क्षितिज की छांव में सुस्ता रहा होगा कहीं।

कुछ ही देर बाद झेरने की झरमर-झरमर की आवाज़ सन्नाटे को चीर रही होगी। बदी की हथेलियों पर नेती की छाप सदा के लिए छप चुकी है। मथनी के साथ लगा लोहे का कुंदा अर्थात सींकळौ और नेडी दोनों ही चरमर-चरमर करते हैं तो बदी की देह में झुरझुरी सी दौड़ जाती है। झेरने की झरमर-झरमर सुनते ही बेटा उठ बैठेगा बिलौवने के पास और रात की ठंडी रोटी हाथ में लेकर बाट जोहेगा मक्खन की।

वेला जगा तो बदी न जाने क्यों अलसुबह ही समझाने लगी, “"कांई हर कूंई सूं बैर मोल लियो बैस? चुनावां रो झंझट में पड़ कै गाँव भर सूं रिश्ता बगाड़ रहयो! अर वैसे भी आपां रो है कोण? लोगां ने तो बस मज़ो ही लेवणो है!"

"पूरो गाँव म्हारो होसी! देखे कोनी, छोकरा म्हारी नेतागिरी पै फिदा हुआ जावै!"

"सब फोकट री दारू को कमाल है! कालै उकां दारू मलेला, तो प्याली चाटण तां ओतै दौड़ जास्या! पेट काट कै बचायो रो रूपयो ऐसई पाणी वांगा बहावै! सारी पूंजी ऐसई लुटाई देवै! म्हारी मान, भावरी फेर चालू कर ले!"

बदी ने नेती को और अधिक कस कर पकड़ लिया था, वेला पर आया गुस्सा रस्सी पर निकल रहा था। रस्सी तो चोटिल होगी नहीं और हथेली इतनी कड़ी हो गई है कि दबाव आसानी से सह लेगी।

“म्हें कोई हारी कोनी। “, न जाने किस घमण्ड में चूर वेला बोला।

हारी अर्थात भावरी करने वाला। भावरी मनै तीसरे चौथे हिस्से के लिए किसी और के खेत बोना।

बदी तुनकी, “"तो, ज़मींदार बण गयो?"

"देख, तू आपरा काम सूं काम राख! म्हारो दिमाग मत चाट!"

"छोकरा रो तो ख्याल कर लियो कदैई! अंग्रेजी स्कूल में पढ़ावण रा सपणा देखै, पण सरकारी स्कूल भी छूट जासी! ओ पूरो दिन इधर-उधर आवारागर्दी करतो फिरे! तेरह को भी कोनी भयो, अर बीड़ी फूंकण लाग गयो!"

"बीड़ी पीसी अभी सूं!", चीखता हुआ वेला, मक्खन का इंतज़ार कर रहे बच्चे पर टूट पड़ा।

बदी अपना सिर धुनने लगी कि नाहक ही बच्चे की बात बीच में लायी। अपना सारा गुस्सा बच्चे पर निकाल कर वेला ने दैनिक कार्य निपटाए और फिर जब सूरज की नींद अच्छी तरह उड़ गई, वह चलता बना चौहटे की तरफ जहाँ टोली के कुछ लोग उसका इंतज़ार कर रहे थे।

गाँव का माहौल बिगड़ता जा रहा था। मुफ़्त की दारू उड़ाते वेला के अनुयायी उसे अपने सिर पर चढ़ाए रखते थे। वेला ने पंचायत की नाक में दम कर रखा था। कुछ महीने पहले तक खुले आम रुपये बटोरती पंचायत अब सांस भी जरा आहिस्ता लेती थी कि कहीं वेला भाई को ख़बर न हो जाए। सूचना के अधिकार ने सारे काले कारनामे उजागर कर दिये थे। आँच गाँव की सीमाओं को लांघकर तहसील मुख्यालय तक पहुँचने लगी थी। शिवपुर के ज़मींदार साहब का ख़ौफ़ न होता तो किसी न किसी झूठे केस में फंसाकर वेला का कॅरियर ख़त्म कर दिया जाता लेकिन ऐसा कुछ न हुआ।

लोगों को मज़ा आ रहा था इस खेल में। बाहर-बाहर राख नजर आ रही थी लेकिन हर कोई जानता था कि अंदर अंगारे सुलग रहे हैं। इंतज़ार था तो आग जलने का। उधर वेला का आत्मविश्वास चरम पर था। वह हर सरकारी काम में दखल देने लगा। न केवल सरकारी काम में, बल्कि बाहर से कोई फेरीवाला गाँव में आता तो वेला उस से भी आधार कार्ड मांगता, धमकी देता बिना उसकी इजाज़त गाँव में प्रवेश करने पर टांगें तोड़ने की।

इस बीच एक अप्रत्याशित घटना घटित हुई। राज्य में सरकार उसी पार्टी की थी जिसके नेता थे शिवपुर के ज़मींदार साहब। लेकिन शिवपुर की विधानसभा सीट विपक्षी पार्टी के पास थी। ज़मींदार साहब ने हर गाँव में वेला जैसे चेले पाल रखे थे लेकिन वेला चूँकि ज़मींदार साहब के खेतों में भावरी कर चुका था, वह अपने आप को कुछ खास समझता था। ज़मींदार साहब का भी फायदा ही था इस ग़लतफ़हमी में क्योंकि भील समाज के एकमुश्त पड़ने वाले वोट विधानसभा चुनाव की दशा और दिशा तय कर सकते थे। राज्य सरकार ने ‘प्रशासन आपके द्वार’ नाम से एक योजना चलाई जिसमें प्रत्येक गाँव में कैम्प आयोजित किए गये सरकारी योजना के प्रचार प्रसार के लिए जिसका मुख्य उद्देश्य चुनाव के मद्देनजर सरकार का प्रसार प्रचार था।

अपने विधान सभा क्षेत्र के हर कैम्प में शिवपुर के ज़मींदार साहब आमंत्रित किए जाते (ख़ुद के ही द्वारा), जहाँ उनका पगड़ी पहना कर, माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया जाता। शिवपुर में भी यही हुआ। लोगों ने वेला का जलवा देखा। वेला ने अपने हाथों से पगड़ी पहनाई, ज़मींदार साहब ने न सिर्फ वेला को गले लगाया बल्कि अपने पास कुर्सी पर भी बिठाया।

यहीं पर वह अप्रत्याशित घटना हुई। पूरा गाँव कैम्प में जुटा हुआ था। किसी को जाति प्रमाण पत्र बनवाना था, किसी को मूल निवास। कोई किसी योजना में नाम जुड़वाने आया था, कोई वृद्धावस्था पेंशन शुरू करवाने।

और इतने सारे लोगों के बीच कुछ ऐसा हुआ कि गाँव की राजनीति में वेला का कद कुछ फीट और ऊँचा हो गया।

लोग आँखें फाड़ कर देख रहे थे, वेला ज़मींदार साहब के बगल वाली सीट पर बैठा था, ज़मींदार साहब जिन्हें इस बार विधानसभा चुनाव लड़ने के लिए टिकट मिलने की पूरी उम्मीद थी। ज़मींदार साहब ने स्वागत सत्कार में पहनाई गई अपनी पगड़ी वेला के सिर पर धर दी थी। वेला को पगड़ी किसी मुकुट सा सुकून दे रही थी। वेला एक पैर पर दूसरा पैर रखे किसी शहंशाह की तरह कुर्सी पर बैठा था तभी ज़मींदार साहब ने सरपंच को तलब किया।

लोग आँखें फाड़कर देखते रहे, ज़मींदार साहब सरपंच को डाँट रहे थे। सरपंच हाथ जोड़े न जाने क्या गुहार लगा रहा था। और वेला शान से बैठा सिगरेट फूंक रहा था जिसका धुआँ वह जानबूझकर सरपंच के मुँह पर मार रहा था।

लोग देखते रहे, वेला दिखाता रहा अपना रौब। सरपंच के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। इतनी बेइज़्ज़ती, वह भी अपने गाँव के लोगों के सामने।

कहने को यह कोई बड़ी घटना नहीं थी लेकिन इस घटना ने सरपंच के दिल में वह टीस दे दी थी जो उस अँधेरी रात ने भी न दी जब वेला अपने लोगों समेत उसके घर में घुस आया था।

राजनीति के खेल निराले हैं। बंद दरवाजे के पीछे नंगा किया जाना भी उतना दर्द नहीं देता, जितना लोगों के बीच कपड़े उतरवाने की धमकी से मिलता है।

सरपंच के सब्र का बांध टूट गया।

'बस अब और नहीं', उसने ठान लिया था।

***

और फिर अचानक से वेला की कहानी ख़त्म हो गई।

मगर कैसे?

किसी भी कहानी को यूँ एकाएक ख़त्म नहीं होना चाहिए लेकिन सच में, वेला की कहानी यही पर थम गई।

आखिर हुआ क्या था?

वेला खाट में पड़ा है। करवट बदलना तक उसके हाथ में नहीं। ज़िंदगी इस कदर बदसूरत हो गई है कि मौत किसी अप्सरा सी नज़र आने लगी है। पिछले साल किसी रात के अंधेरे में नक़ाबपोशों ने उस पर हमला किया था। वेला को संभलने का मौका नहीं मिला। रीढ़ की हड्डी कई किलों वजनी पत्थरों के प्रहार नहीं झेल पायी।

साल भर बाद भी वेला अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता। उस अँधेरी रात मरने के कगार पर पहुँच चुके वेला के लिए ज़मींदार साहब ने इतनी मदद कर दी थी कि सरकारी हॉस्पिटल में एक बेड दिलवा दिया, जो कुछ महीनों तक उसका वजन सहता रहा। वहाँ से बेड खाली करवाया गया तो वेला के यार दोस्त न जाने किस उम्मीद में उसे ज़मींदार साहब की हवेली पर ले गये। गेट तक न खुला हवेली का। खुलता भी क्यों, विधानसभा चुनाव का टिकट मिलता तो शायद दिखावे के लिए और मदद भी कर देते। बेआबरू होकर लौट चले हवेली के द्वार से। कुछ दिन झोंपड़ी में भीड़ रही फिर सभी अपना अपना जीवन जीने में व्यस्त हो गये।

वेला के पीछे जो भीड़ थी वह बिखर चुकी है।

गिरते पड़ते ही सही, सरपंच ने चुनाव दोबारा जीत लिया है।

जिस झोंपड़ी को महल में बदलने का सपना देखा था, वह और भी जर्जर हो चली है।

वेला की पत्नी कमठे पर जाती है। ईंटें ढोते ढोते कमर दुहरी हो गई है, लगता है वक़्त से पहले ही बुढ़ा गई। वेला का लड़का, जिसे इंग्लिश मीडियम स्कूल में भर्ती करवाना था, उसकी सरकारी स्कूल भी छूट गई है।

गाँव में ख़बर है कि अपने बाप के सपनों के बोझ तले पिस चुका वह लड़का हाइवे के किसी ढाबे में बर्तन धोता देखा गया।

ज़िंदगी को इतना बेरहम नहीं होना चाहिए था, और मौत को भी...

विनोद कुमार दवे
206, बड़ी ब्रह्मपुरी, मुकाम पोस्ट भाटूंद,
तहसील बाली, जिला पाली, राजस्थान 306707
ईमेल davevinod14@gmail.com
मो. 9166280718

व्यंग्य

आवाज़ की दुनियां में सन्नाटा

अख़तर अली

जब आवाज़ से मुलाक़ात हुई तब आवाज़ के गले से आवाज़ नही निकल रही थी। आवाज़ ने पहले इधर उधर देखा फिर आवाज़ दबी आवाज़ में बोली – आवाज़ संकट में है।

क्या हुआ ?

आवाज़ ने भरी हुई आवाज़ में कहा - आवाज़ को दबाया जा रहा है। अलिखित सूचना जारी कर दी गई है कि कोई आवाज़ नही करेगा। आपको बाजे की आवाज़, बम की आवाज़, सायरन की आवाज़, कुत्ते की आवाज़ तो सुनाई दे रही होगी लेकिन आदमी की आवाज़ नहीं।

क्या कहा कुछ दिन पहले आपने आदमी की आवाज़ सुनी थी ? ज़रूर वह सहमी हुई आवाज़ होगी, कराहने की आवाज़ होगी, सिसकने की आवाज़ होगी।

यानि बोलने पर पाबंदी है ?

नही बिलकुल नही। उन्होंने आवाज़ को बहुत कुछ बोलने की छूट दी है, हम उनके आभारी हैं।

कैसी छूट ?

उट-पटाँग बात करने की छूट। कसीदा पढ़ने की छूट। हाँ जी हाँ करने की छूट। हम उस तरह की हर आवाज़ निकाल सकते है जो शब्द न हो। शब्दों की आवाज़ से आशय ऐसे वाक्यों से है जिन में विचार हो, आव्हान हो, समीक्षा हो, चेतावनी हो, चुनौती हो, सम्मोहन हो। यही आवाज़ आवाज़ है बाकी आवाज़ शोर। ऐसी आवाज़ पर प्रतिबंध नही है जो शब्दों का कीचड़ करती हो।

शब्दों से इतनी इर्ष्या ?

उनका मानना है कुछ लोग शब्दों से कविता लिख रहे हैं, लिख रहे हैं व्यंग्य, तैयार कर रहे हैं पोस्टर, दे रहे हैं भाषण, लगा रहे है नारे। इसे वो शब्दों का दुरूपयोग मानते हैं।

यह तो गलत बात है ?

नही भाई। वो शब्दों को बचाने की कोशिश कर रहे हैं तो क्या गलत कर रहे हैं ? शब्दों की फज़ूल खर्ची पर लगाम ज़रूरी है। हम शेर, हाथी, गौरय्या तो बचा नही सके अब शब्द तो बचा लें।

यानि अब आदमी अपनी इच्छा का बोल भी नही सकता ?

यह आपसे किसने कह दिया ? अफवाहों पर ध्यान मत दीजिये। आदमी जो चाहे और जितना चाहे मन ही मन बोल सकता है।

जो ऊँची आवाज़ में बोलना चाहे तो ?

तो बोलने से पहले अनुमति लेना ज़रूरी है। अनुमति कोई भी मांग सकता है लेकिन मिलती किसी-किसी को ही है। जिनको मिलती है उनको भी बहुत से निर्देशों का पालन करना होता है।

अगर किसी ने चोरी छिपे कहीं बोल भी दिया तो किसी को मालूम नही पड़ेगा।

तुरंत मालूम पड़ जायेगा क्योंकि कान मुखबिरी कर देगे। जब से आवाज़ के पीछे कान को लगा दिया गया है तब से कान आवाज़ के आगे-आगे चल रहे हैं। कान आवाज़ के सब से बड़े दुश्मन बन कर उभरे हैं। इधर आवाज़ निकली – उधर कान ने की मुखबिरी। आवाज़ पर इस कदर पाबंदी और सख्ती है कि किसी के मुँह से गलती से भी आवाज़ निकल जाती है तो हज़ार फुट दायरे का हर आदमी काँप जाता है।

आवाज़ को इतने कलात्मक ढँग से दबाया जा रहा है कि आवाज़ को दबाने की ज़रा भी आवाज़ नही हो रही है। पहले एक नारा लोकप्रिय हुआ था – 'आवाज़ दो हम एक हैं' अब एक आदमी भी आवाज़ के समर्थन में नही है। किसी को किसी की आवाज़ सुनाई न दे इसलिये शोर का बंदोबस्त किया जा रहा है। कवि सम्मलेन, मुशायरा, संगीत संध्या, नृत्य नाटिका के नाम पर शोर प्रायोजित किया जा रहा है। होंठ पर उंगली वाले चित्र हर घर की दीवार पर टंगे हुए हैं।

हाई कमान ने जब से आवाज़ पर ऐतराज़ किया है अकादमी द्धारा गूँगों को ढूँढ-ढूँढ कर सम्मानित किया जा रहा है। तोतले पुरस्कृत हो रहे हैं। बहरे उच्च पदों पर आसीन हैं। अँधे चित्र कला

प्रतियोगिता के निर्णायक होने लगे हैं। जो बोल सकते हैं वो भी गूँगे होने का अभिनय कर रहे हैं। भाषा और विचार के अखाड़े में नूरा कुश्ती चल रही है। सम्मान और पुरस्कार के लिये लोग आपरेशन के ज़रिये ज़बान कटवा कर देश भक्ति का सबूत दे रहे हैं। निजी अस्पतालों में ज़बान कटवाने के आकर्षक आँफ़र चल रहे हैं। बोलने वालों को गिरी हुई नज़रों से देखा जा रहा है। डाक्टर और इंजीनियर नहीं बल्कि गूँगा दामाद परी के पापा की पहली पसंद है। लड़कियाँ सहेलियों को गर्व के साथ बता रही है – मेरे ये तो गूँगे हैं।

मंच और माईक उनके हाथ में हैं जिन्हें बोलने का हुनर नहीं। बेहुनर लोग हुनरमंद को कॉलर पकड़ कर मंच से उतार रहे हैं। माईक से पीट रहे हैं। न बोल पाने वालों के पक्ष में कोई नही बोल पा रहा है। "आवाज़ नहीं" की धमकी के विरोध में कहीं आवाज़ नही है। होशियारों के चुप रहने से बड़ा ख़तरा मूर्खो का बोलना है। अब समझ में आया कि " अभिव्यक्ति के ख़तरे उठाने होगे" की समझाईश देने की ज़रूरत क्यों पड़ी थी।

चुप रहने के फ़ायदे और बोलने के ख़तरे के अध्ययन ने आवाज़ को कुचला है। लेकिन यह भी सच है कि जो दीवाने बोलने पर आमादा हो जायें फिर उनकी आवाज़ कोई नही दबा सकता। उस आवाज़ की गूँज सभी दिशाओं में फैल जाती है।

अख़तर अली

निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल, आमानाका,
रायपुर (छत्तीसगढ़) 492010,
मो. 9826126781

लघुकथा

वनसभा

पूजा अग्निहोत्री

शांतिवन अपने नाम के अनुरूप तपोवन की भाँति शांत और सौम्य था। उसमें नाना प्रकार के जीव-जंतु और वृक्ष-वनस्पतियाँ भली प्रकार पोषित होते।

सागौन, साल,पीपल, बरगद, सरई, बीजा, बबूल, आम, महुआ, कटहल, देवदार, चीड़ सब एक दूसरे के सुख-दुख में भागीदार बनकर प्रेमपूर्वक रह रहे थे।

पर बीते कुछ दिनों से पता नहीं किसकी चश्मेबद लग गयी जो, आये दिन मातम ही पसरा रहता।

रोज किसी न किसी की हत्या होती और दूसरे दिन कुछ दो पैरों वाले जानवर आकर शव को ट्रैक्टर में लादकर ले जाते।

सागौन, साल,पीपल, बरगद, सरई, बीजा, बबूल, आम, कटहल, महुआ, देवदार, चीड़ सब बहुत दुखी थे, आखिर उन्होंने सबसे वरिष्ठ सदस्य बरगद दादा के अगुआई में एक सभा का आयोजन किया।

पीपल ने वटवृक्ष से पूछा, "दादा, मैंने तो कहीं सुन रखा है कि, हमें काटने पर प्रतिबंध है, हमें संरक्षण मिलेगा। पर ये क्या तब से तो स्थिति और विकट हो गई है। "

बरगद दादा, अपनी धरती छूती हुई जटाओं को सहलाते हुये बोले, "भाई सुना तो सच ही है, हमारे विकास और संवर्धन के हित में कानून तो कई बनाये गये, फिर दूध की रखवाली करने बिलाव को बैठा दिया गया, अब बिलाव कितना भी चाहे लोभ संवरण नहीं कर सकता। "

"ये मनुष्य भी कितने गद्दार होते हैं, स्वार्थ के लिये स्वास्थ्य हित, पर्यावरण हित और देश हित भी भूल जाते हैं। " बीजा ने अपनी सहमति दर्शायी।

"वह कैसे?" नन्हें सागौन ने अपने बड़े-बड़े पत्ते हवा में लहराते हुये पूछा।

"अरे! क्या तुम्हें नहीं पता कि हम इन इंसानो का कितना हित करते हैं। " साल ने सागौन पर वक्र दृष्टि डालते हुए कहा।

"अरे! उसे कैसे पता होगा, अभी तो वह ज़मीन से ऊपर आया है। " आम ने उसे स्नेह से देखते हुए साल को समझाया।

"मुझे भी बताओ न। " मनुहार करते हुए सागौन ने कहा।

तब महुआ ने बोलना शुरू किया, "देखो, इन मनुष्यों का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक हम पर निर्भर करता है। पहली साँस के लिये उसे जिस ऑक्सीजन की जरूरत होती है न, वह हमारे द्वारा ही उत्सर्जित होती है, फिर हमारे जड़ी-बूटी, फल-फूल, इमारती लकड़ी, हमसे निर्मित वाद्ययंत्रों, फर्नीचर का उपयोग कर के हमारी ही जलाऊ लकड़ी से बनी चिता में जलकर मोक्ष प्राप्त करता है। "

"तब भी इन्हें हमारी कोई कीमत नहीं, हुँह। " सरई ने अपने रेशा झाड़ते हुये कहा।

देवदार ने उत्सुकता से कहा, "और क्या करते हैं, हम मनुष्यों के लिये?"

कटहल ने कहा, "अरे बचुआ कहाँ तक गिनाऊँ कि, हम मानवों का कितना उपकार करते हैं। जैसे कि महुआ भाई ने बताया हम इन्हें प्राणवायु तो देते ही हैं, साथ ही इनके द्वारा उत्सर्जित अशुद्ध वायु 'कार्बन-डाई-ऑक्साइड' को खींचकर पुनः शुद्ध करते हैं।

हम सिर्फ पानी और सूर्यकिरणों से अपना भोजन बनाते हैं, जिसे प्रकाश संश्लेषण कहते हैं। और इसी के परिणामस्वरूप मानवजाति को, अन्न, फल, मेवा, गुड़, चीनी आदि मिलते हैं। "

"और हम ही बादलों को आकर्षित करके वर्षा भी करवाते हैं, यदि ये मनुष्य हमें यूँ ही काटते रहेंगे तो फिर बारिश कैसे होगी। और बिना वर्षा के तो अकाल पड़ेगा और अन्न-जल के बिना ये भी मरेंगे ही। " चीड़ ने भी अपना ज्ञान साझा किया।

जैसा कि कहते हैं न, दिन में एक बार जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है, उस वर्ष सच में भीषण अकाल पड़ा।

अमीरों ने अपने गोदाम भर लिये और जनसाधारण दाने-दाने को तरसते, आखिर गोदाम पर धावा बोलकर अन्नराशि लूट ली जाती, थाना कचहरी होता। कुल मिलाकर स्थिति बहुत बदतर हो गयी थी।

एक सुबह जब सब वृक्ष नींद के आगोश में थे, नन्हें सागौन ने देखा कि उसके आसपास कई मनुष्य हैं किसी के हाथ में औजार हैं, किसी के सर पर गट्ठर किसी के हाथ में लोहे के जाल। उन्हें देखकर वह बुरी तरह से डर गया और ज़ोर से चीखा।

उसकी चीख से उनकी तंद्रा (निद्रा) टूटी, और बरगद दादा ने उसे अपनी जटाओं में लपेट कर तने से चिपका लिया।

और समझाया, "बेटा डरने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उत्सव मनाने का क्षण है, आज ये मनुष्य वृक्षारोपण करने आये हैं। "

पीपल ने कहा, "इस वर्ष पड़े दुर्भिक्ष ने सबकी अक्ल ठिकाने लगा दी है, और अब ये अपनी भूल का प्राश्चित्य करने आये हैं। अब कुछ ही समय में शांतिवन पुनः पहले की तरह हरा भरा हो जायेगा।

सभी वृक्ष खुशी से झूम उठे और झूम-झूम कर मेघ मल्हार गाने लगे।

पूजा अग्निहोत्री
छतरपुर (मध्य प्रदेश)
ईमेल - agnihotrypooja71@gmail.com

कब लिखें / क्या लिखें / कैसे लिखें?

जब दुखी हों, दुख लिखें,
ठंढ में ठंढक लिखें
चिलचिलाती धूप में
नंगे सिर, नंगे पांव - 'लू' लिखें
पान का गिल्लौर दबाये
मुस्कुराते होठों से-
व्यथा-कथा न लिखें
हृदय जब करुणार्द्र हो- करुणा लिखें
बकरी चराकर- 'बिल्लेसुर बकरिहा' लिखें
स्कॉर्पियो में सैर करते- 'तीसरी कसम' का दर्द न लिखें।
जो लिखें- जीकर लिखें
सरदार भगत सिंह होकर लिखें-
मरकर लिखें।
आलसी बनकर 'चरैवेति-चरैवेति' का उपनिषद् गान न लिखें।
अर्थभरे शब्द लिखें
अनुभूतभाव भरे पद लिखें
गगन के पत्र पर ज्योति के अंक लिखें।

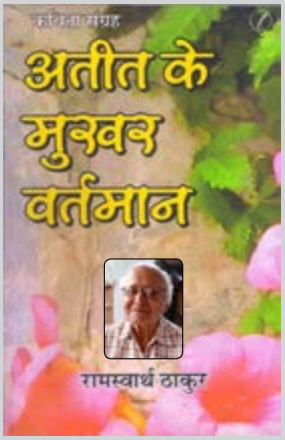

–मोतिहारी पूर्वी चम्पारण बिहार मो. 9123419601

लघुकथा

सोच बदल गई

ऋतु दुबे

माधुरी किचन में रोज की तरह शर्मा जी यानी अपने पति के लिए नाश्ता बना रही थी। अचानक से उसे ड्राइंग रूम में जोर-ज़ोर से हँसने की आवाज़ सुनाई दी वह सोच ही रही थी, की कौन लोग हो सकते है?तभी शर्मा जी उसे आवाज़ लगाने लगे।

अरे ! माधुरी मेहमानों के लिए कुछ चाय -पानी लाओ । देखतीं नहीं, हमारे घर आज मिशन ग्रीन अयोध्या के स्वयं सेवक आए हुए हैं।

माधुरी भी कार्यकर्ताओं से मिलने ड्राइंग रूम तक गयी। शर्मा जी मिशन ग्रीन अयोध्या की टीम की ओर मुखातिब होते हुए कहने लगे आप लोग बहुत ही नेक और परोपकारी काम कर रहे हैं। आप सभी की सोच को सलाम है, भला कौन इतना समय देकर शहर के बारे में सोचता है। माधुरी, शर्मा जी व मिशन ग्रीन अयोध्या के सदस्यों कि थोड़ी-सी बातों को सुनकर व बात करके फिर से रसोई में चाय नाश्ते के इंतजाम में लग गई। वह मन ही मन सोचती जा रही थी की कैसे शर्मा जी पहले मिशन ग्रीन अयोध्या के सदस्यों का मज़ाक उड़ाया करते थे। शर्मा जी बैंक में कैशियर है। सुबह अखबार पढ़ कर, नाश्ता करके बैंक चले जाना। बैंक से लौटने के बाद शाम की चाय के पश्चात टीवी में कुछ चैनल बदलने के बाद, रात का खाना खाने के बाद, सो जाना, यही शर्मा जी की लगभग रोज की दिनचर्या है। आसपास में क्या हो रहा है इससे उन्हें कोई बहुत ज़्यादा मतलब नहीं रहता।

लेकिन जब वहाँ मिशन ग्रीन अयोध्या के सदस्यों को देखते तो उनका भाषण चालू हो जाता देखो इन नौजवानों को, करियर बनाने के टाइम में इनको समाज सेवा सूझ रही है। जो इंसान इन फिजूल के कामों में समय बर्बाद करेगा वह क्या खाक नौकरी पाएगा। और आज शर्मा जी के बातों में अचानक परिवर्तन नहीं हुआ था। यह परिणाम था, उनके स्वास्थ्य में इधर कुछ दिनों से आ रही परेशानियों का, जिन्हें वह रोज झेल रहे थे।

कई दिनों से, शर्मा जी के सिर में दर्द,भारीपन रहता हमेशा थकान महसूस होती रहती, पर एक दिन उनकी बेचैनी इतनी बढ़ गयी थी की, उन्हें सांस लेने में भी दिक्कत महसूस हो रही थी। शर्मा जी को लगा अब डाक्टर के यहाँ जाना ही पड़ेगा तो उन्होंने रिश्तेदारों और परिचितों से मशवरा करके शहर के जाने माने डाक्टर से परामर्श लेने के लिये तुरंत डाक्टर का अपांइटमेंट लिया। हालांकि डाक्टरों के यहाँ जानें से वो बड़ा कतराते थे।

डॉक्टर ने कुछ टेस्ट के बाद बताया कि उन्हें हाइपरकेपनिया (hypercapnia) की शिकायत है।

शर्मा जी की जानकारी के लिए डाक्टर ने बताया आपके शरीर में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ गया है, कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बढ़ने से कई तरह की समस्याएं हो सकती हैं जैसे सर दर्द, चक्कर आना, उच्च रक्तचाप व श्वसन में रोधन आदि इसे हाइपर कार्बिया या कार्बन डाइऑक्साइड विषाक्तता भी कहते हैं।

शर्मा जी ने जब बचाव के बारे में पूछा तो डॉक्टर ने कहा सक्रिय रहें, नियमित व्यायाम करें। पर्यावरणीय प्रदूषकों, एलर्जी और श्वसन संबंधी परेशानियों के संपर्क में आने से बचे जो श्वसन स्थितियों को बढ़ा सकते हैं। घर के अंदर वायु की गुणवत्ता अच्छी बनाए रखें और अपने फेफड़ों को हानिकारक पदार्थों से बचाने के लिए सावधानी बरतें।

वैसे शर्मा जी को डाक्टर की दवा व सलाह से आराम तो मिल गया था। पर अब उन्होंने भी मिशन ग्रीन अयोध्या की टीम के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने शहर को स्वच्छ व सुंदर बनाने का दृढ़ संकल्प लें लिया है। आज भी सभी परिचितों को एक-एक पौधा उपहार स्वरुप देने का प्रोग्राम है।

माधुरी ने शर्मा जी की चुटकी लेते हुए कहाँ आपने भी फालतू काम शुरू कर दिए, शर्मा जी ने मुस्कुराते हुए कहा जीवन बचाने और नवजीवन रोपने से बड़ा कोई काम नहीं हो सकता।

ऋतु दुबे
अयोध्या
मो. 8115258993
ईमेल : ritudubeypandey@gmail.com

मधुश्री के.
थाणे, महाराष्ट्र
मो. 7710969075

दंभ

मात्र पानी की बूंद सी मौजूदगी
है आदमी की मौजूदगी।
हर पल
डरता रहता है
कहीं से कोई लहर न आ जाए
अनधिकृत रूप से न ले जाए।
अपने साथ
मिटादे अस्तित्व।
और विलीन करले
अपने गर्भ में।
धारण करने को नया बीज
नई यात्रा में आगे बढ़ने को।
नए रूप में पनपने को।
नहीं जानता
सिलसिला
जीवन क्रम का
नियम है प्रकृति का
समय के समानान्तर
चलने का।
लेकिन !
कभी-कभी असमय
बूँद का फूल कर कुप्पा हो जाना
बूँद से बुलबुला बन जाना
बन जाता है सबब
उसके अंत की तैयारी का

चौराहा ...

इस चौराहे पर
मैं आज क्यों
दिशाहीन हो गयी हूं...
चार-चार रास्ते हैं
भीड़ है और
वे रास्ते और भी बंट गये हैं
आगे और आगे

कभी नहीं होता था
कि मुझे
अपना गंतव्य न पता हो

आज
यह सब क्या है
कि मैं भटक रही हूं
मेरा विवेक भी जैसे
बांझ हो गया है
हर चौराहे पर
एक भुलावे जैसा
इश्तेहार टंगा है
जो चारो - किनारों पर
हूबहू एक सा लगता है
जिसमें वह सब है
जो नहीं होना चाहिए
और वह सब नहीं है
जो होना चाहिये

क्या मेरी सोच
इतनी कुंद हो गयी है
कि मैं अच्छे-बुरे की पहचान भूल गई
या आता नहीं मुझे आंकना
अब नये आंकड़ों का जोड़...
कहीं जरूर
मेरी दृष्टि कुंदला गई है
और देख नहीं पाती
दूसरी आज की दृष्टि से
जिसमें सब-कुछ
टेढ़ा-मेढ़ा और तिरछा दिखता है
कहते हैं
आज इसी अक्स का रिवाज है...
चीजों को
उलट-पलट कर रख देने से
वह आधुनिक हो जाती हैं-
यही दृष्टि नहीं है मेरे पास

अब चौराहे पर
मैं उलटी लटकी खड़ी हूं...।

सम्पर्क
246, Stratford Drive
Broadview Hts, Ohio-44147 (U.S.A.)
Phone : (440) 717-1699
e-mail : sudershen27@gmail.com

साभार:

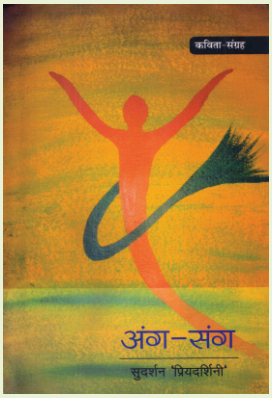

क्षणिकाएँ

अहमियत
नहीं थी तुम्हारी नज़र में
मेरी नज़्म की कोई
नज़्म ने चुपचाप
मिटा दिया
तेरे नाम का लफ्ज़
अपने सफ़हे से ....

ज़रूरी
तो नहीं था
अश्क ही बहाती
ग़म से निजात पाने को
मैं गुदगुदा कर
हँसाती रही
अपना दर्द ....

टूटकर टूटकर
अब बहुत
कमज़ोर हो गई थी
दिल की दीवार
जो भी आया
ठोकर से
गिराता चला गया ...

झुक कर
चूम लेती है अक्सर
मेरी नज़्म
उस दरगाह की मिट्टी
मुहब्बत
करने वालों की
मिट्टी
बड़ी पाक होती है...

इतना भी दूर
मत रहा कर ख़ुदाया !
हर बार
खाली हाथ ही
लौट आती हैं
दुआएं मेरी ..!

यूं ही नहीं
फटते बादल
आँधियों के साथ
जब बरसती हैं
आँखें
बहुत कुछ टूटकर
बिखर जाता है भीतर
काश
कि कोई पढ़ पाता
इस बारिश के
आँसू .....

इक
अज़नबी सा
रहा
सदा लहज़ा उनका
वज़ह
पूछते भी तो किससे ..?
हमने
अपनी ज़ुबां
ख़ामोशी को दे दी ....

सभी
कच्चे ही निकले
रिश्ते दरमियां
वे खेलते रहे भावनाओं से
और हम
रिश्तों का फर्ज़
निभाते थे ....

कोई
आज भी
लिख रहा है
मेरे नाम की नज़्म
और
किसी के लिए उम्र भर
बस मामूली सा रहा
किरदार मेरा....

अधूरी ही रही
मेरी हर नज़्म
कभी सफ़हे
ग़लत चुन लिए
तो कभी
लफ्ज़ ...!

ज़रूरी
नहीं थी मैं
तुम्हारे लिए
बस ...
ज़रूरत थी ....

सवाल भी
ख़ुद से करते रहे
और ज़वाब भी देते रहे
यूं ज़िंदगी
दीवारों के सहारे
काट ली हमने ....

आज
नहीं लौटी चिड़िया
कफ़स में
जाने भटक गई रास्ता अपना
या पैदा कर लिया
हौंसला
उड़ने का.....

किसी
नज़्म की तरह था
तेरा दर्द
जो जल्द ही
समा गया मेरे भीतर ...
तुमने जो कहा
वो उसूल थे
मैंने जो भी कहा
वो फ़िज़ूल ...

हरकीरत हीर
सुंदरपुर, हाउस न. 5
गुवाहाटी
मो. 8638761826